॥२१७॥

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

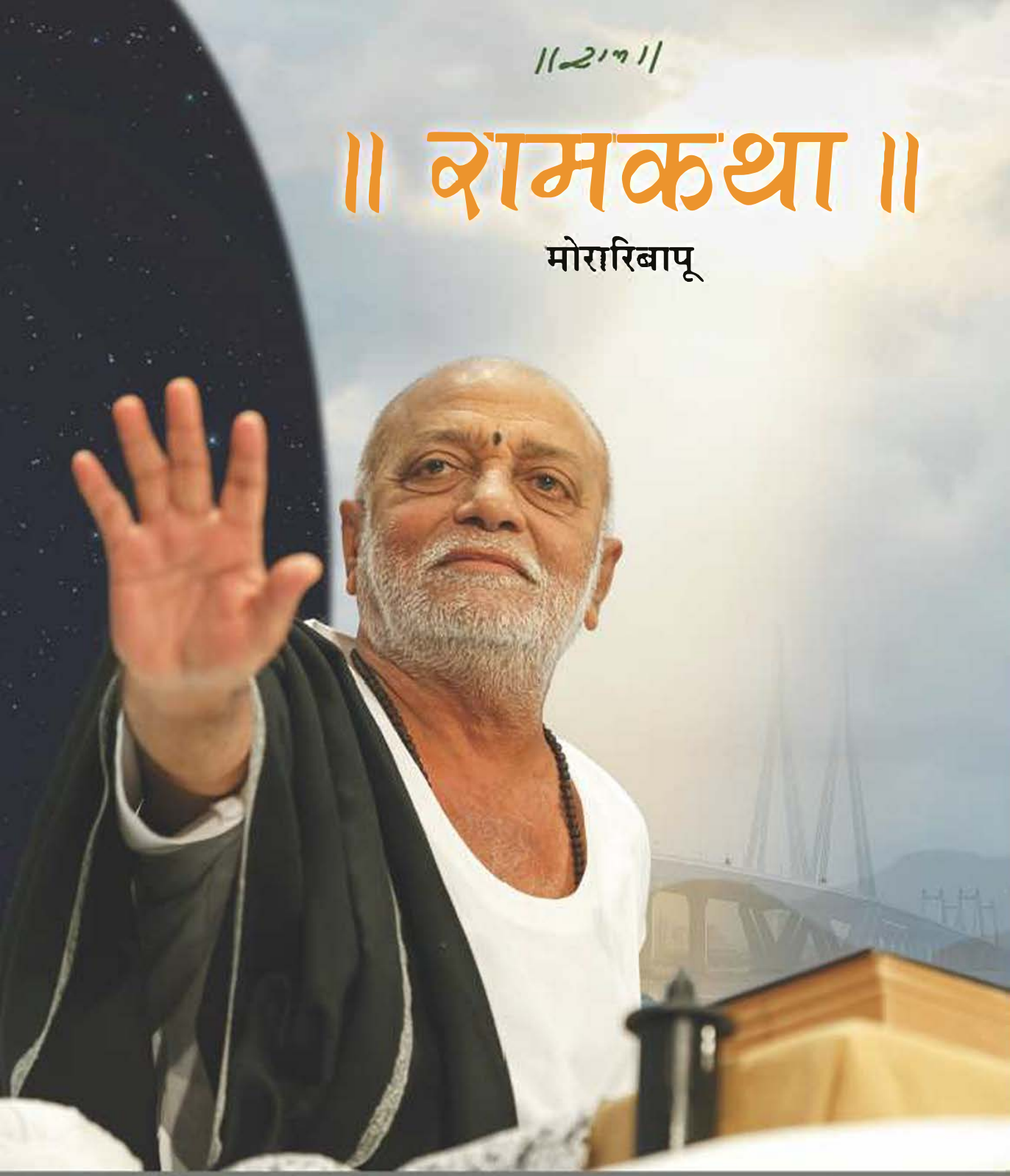

मानस-सावधान

मुंबई (महाराष्ट्र)

जनम एक दुइ कहउं बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी।।
सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध बिमोचनि।।

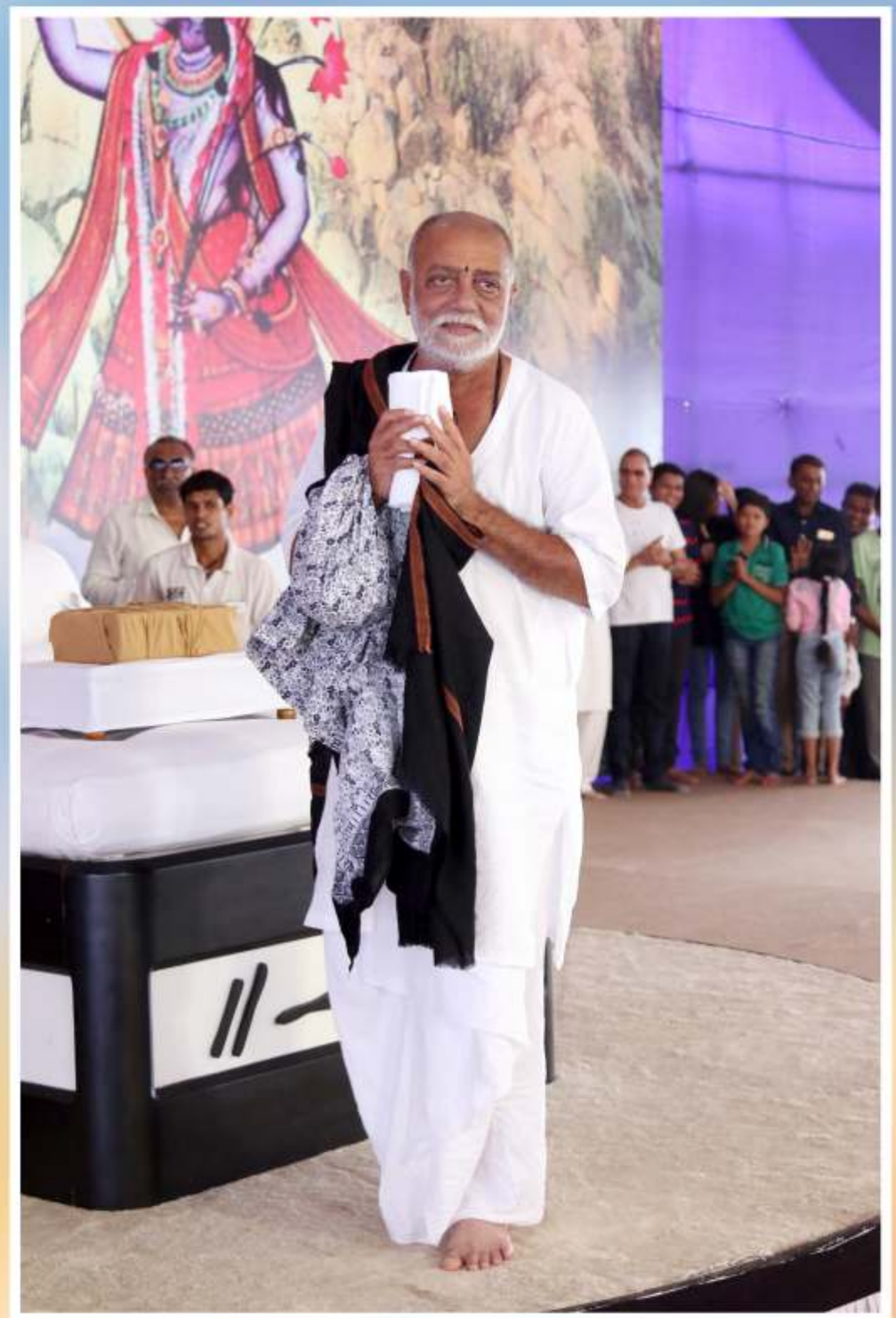

|| रामकथा ||
मानस-सावधान

मोरारिबापू
मुंबई (महाराष्ट्र)
दिनांक : ०९-०१-२०१६ से १७-०१-२०१६
कथा-क्रमांक : ७८७

प्रकाशन :
अप्रैल, २०१७

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

रामकथा पुस्तक प्राप्ति सम्पर्क-सूत्र :
ramkathabook@gmail.com
+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स
स्वर एनिम्स

प्रेम-पियाला

'मानस-सावधान' विषय पर केन्द्रित हुई मोरारिबापू की रामकथा मुंबई (महाराष्ट्र) में दिनांक ०९-०१-२०१६ से १७-०१-२०१६ दरमियान सम्पन्न हुई। 'सावधान' शब्द में संदेश, उपदेश और आदेश तीनों को समाविष्ट समझते हुए मोरारिबापू ने कहा कि 'मानस' का यह 'सावधान' शब्द यदि समझ में आ जाए तो यह त्रिवेणी-तीर्थ है। 'सावधान' शब्दब्रह्म त्रिवेणी-स्नान है।

'सावधान' शब्द का विशिष्ट अर्थसंदर्भ के साथ विश्लेषण करते हुए बापू का कहना हुआ कि यहां बार-बार 'सावधान' शब्द की आवृत्ति हो रही है यह बंधन के रूप में नहीं है। अच्छी तरह हम नाच सके, अच्छी तरह हम जीवन को एंजोय कर सके, अच्छी तरह हम गा सके इसलिए 'सावधान' शब्द यहां गाने का शृंगार है; नृत्य की घुंघरू है, बेड़ियां नहीं है।

बापू ने लौकिक तथा अलौकिक दृष्टि से 'सावधान' शब्द की अर्थछाया स्पष्ट की और लोकिक एवम् अलौकिक दोनों दृष्टि से सावधान रहने का निर्देश भी किया। आध्यात्मिक दृष्टि से सावधानी का अर्थ बापू ने कृष्णमूर्ति द्वारा प्रयुक्त अवेरनेस-जागृति के साथ जोड़ा और मन से, बुद्धि से, चित्त से और अहंकार से सावधान रहने का जिक्र भी किया। साथ ही बापू ने ऐसा दार्शनिक निवेदन भी किया कि जिनकी आंख में आंसू आए वो ही अध्यात्मजगत में सावधान है।

'सावधानी संन्यास है, असावधानी संसार है।' जैसे सूत्रपात के साथ बापू का निवेदन रहा कि हमारे जीवन में सत्संग करते-करते यदि सावधानी आ जाए तो इक्कीसवीं सदी का यह संन्यास है। और विधिवत् संन्यास लेने के बाद भी यदि जागृति न रही तो अविधिसर संसार है। विविध क्षेत्र में सावधान रहने का निर्देश करते हुए बापू ने ऐसा भी कहा कि सेवा में सावधान रहना बहुत जरूरी है। सेवा में सावधानी का अर्थ यह है कि हम जिसकी सेवा करे उसकी रुचि देखकर करे। विवेक से सेवा करे और स्पर्धामुक्त सेवा करे। वैसे स्नेह में भी सावधान रहो और किसी का सम्मान करो तो भी सावधान रहो।

बापू की इस रामकथा में महाप्रभुजी आश्रित पुष्टिमार्गीय वैष्णवों की बहुत-सी संख्या थी तब बापू ने 'जलभेद', 'मधुराष्टक', 'यमुनाष्टक' एवम् महाप्रभुजी के अन्य दर्शन के संदर्भ में भी सावधान विषयक चर्चा की। फलस्वरूप 'मानस-सावधान' कथा के माध्यम से श्रोता समुदाय तुलसीजी एवम् महाप्रभुजी के दर्शन से विशेष रूप में लाभान्वित हुए।

– नीतिन वडगामा

'सावधान' शब्दब्रह्म त्रिवेणी-स्नान है

जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी।।
सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध बिमोचनि।।

बाप! भगवद् कृपा से फिर एक बार मुंबई में रामकथा के माध्यम से कुछ सत्त्व-तत्त्व चर्चा, संवाद करने के लिए हम यहां एकत्रित हैं। व्यासपीठ से आप सभी को मेरा प्रणाम। गोलोकवासी रमाबेन-बाबुभाई कानकिया दंपती और रसेश, हिमांशु और उनके समग्र कानकिया परिवार का ये मंगल मनोरथ कि एक बार हम को कथा मिले। दो तो चंपारण्य में मिली। मैं सोच रहा था कि मैं किस विषय पर बोलूं और बीच-बीच में कथाओं के दौरान मैं कहता रहा कि इस विषय पर बोलना है, इस विषय पर बोलना है। उसमें शायद मैं कच्छ की कथा में भी बोला हूं कि 'सावधान' पर बोलना है। तो मैंने सोचा कि इस कथा का केन्द्रीय विचार 'मानस-सावधान' हो। मैं भूमिका में आपको इतना सूचित करूं कि एक गिनती के मुताबिक 'रामचरित मानस' में ग्यारह बार 'सावधान' शब्द आया है। तुलसी के अन्य दर्शनों में भी कई बार 'सावधान' शब्द मिलता है। लेकिन 'मानस' को केन्द्र में रखते हुए 'सावधान' शब्द ग्यारह बार है। भूल-चूक हो तो हम सुधार लेंगे। आशिष, मैं तुम्हें धर्म सिखाने नहीं आया। बेटा, सावधान करने आया हूं। न मेरा कोई मिशन है किसी को धर्म सिखाना। यहां धर्म के बिना कौन है? तथाकथिन धर्म की बात नहीं। इस लड़के ने कल कहा कि मैं धर्म में नहीं मानता। और आशिष तो आज कहता है। मैं कब से कह रहा हूं। जब साहित्यकारों ने मुझे पूछा कि बापू, आप आस्तिक है या नास्तिक है? मैंने कहा, मैं ना आस्तिक हूं, ना नास्तिक हूं। 'मानस' लिए गाता-फिरता हूं तो न नास्तिक हूं, न आस्तिक हूं, मैं वास्तविक हूं। जैसा आदमी होना चाहिए। जैसे बच्चे ने कहा, मैं धर्म में नहीं मानता। मुझे ऐसे लोगों की जरूरत है। क्या मैं धार्मिक नहीं हूं? क्यां मैं अधार्मिक हूं? मेरी निष्ठा, मेरे इस घाट की निष्ठा धर्म से ज्यादा धर्म के सार में है। धर्म का जो सार है, उसका जो रस है उसमें है। और मैंने कार में आशिष को कहा और उसने खुद कुबूल किया कि सत्य को मानता है वो। प्रेम में मानता है। बस यही धर्म है बेटा। धर्म के पंथ है। कोई यह धर्म, कोई यह धर्म। लेकिन धर्म का सार जो है, निचोड़ जो है।

मैंने आज रास्ते में ही कहा था कि बेटा, तुम्हें जितनी कथा सुननी हो आधा घंटा, एक घंटा तू फ्री है। निकल जाना। यहां कोई बंधन है ही नहीं। मौज आए तो सुनना, न आए तो निकल जाना। सो जाना, पलांठी लगाकर कर बैठना, पैर लंबे करके बैठना, जो जगह हो तो! सब छूट है। लेकिन मेरा कथा का इस बार का मिशन है सावधान करना। इनमें इंग्लिश में आप क्या कहते हैं, आप केसेट बजाओ तो पोज़ दबा दो तो रुक जाता है। जिंदगी में ऐसा कोई बटन है कि जिंदगी रुक जाए? जिंदगी में प्ले को ही दबाना पड़ता है कि निरंतर चलता रहे। ये प्ले जो निरंतर चलनेवाली जिंदगी में मेरा मिशन है सावधान! सावधान! श्रीनाथद्वारा में जाओ, 'सावधान!' भोग आता हो, 'सावधान!' ठाकोरजी का प्रसाद आता हो, 'सावधान!' महाराजश्री निकलते हो तो 'सावधान!' मेरा काम है 'सावधान!' जो कह सके निर्दंभ कि मैं धर्म में नहीं मानता। ये मोबाईल अस्पताल उसी के लिए है। और आज नहीं तो कल बेटा,

दर्पन तुम्हें जब डराने लगे, जवानी भी दामन चुराने लगे।
तब तुम मेरे पास आना प्रिये, मेरा दर खुला है, खुला ही रहेगा।

इसका मतलब भले ये बच्चा बोले कि मैं धर्म में नहीं मानता लेकिन वो धर्म की चर्चा करने के लिए उत्सुक है। धर्मसार समझने के लिए उसकी जिज्ञासा है, उसकी उत्कंठा है। उसीका मैं स्वागत करता हूं। और मैं सालों से कहता हूं, मेरा धर्म है सत्य, प्रेम, करुणा। दुनिया का कोई मज़हब मना नहीं करता। सावधान; इस कथा का मेईन थीम जो है, केन्द्र

में जो विचार है वो है सावधान। 'मानस' में कौन किसको कहां-कहां सावधान करता है? मेरे इस घाट को लगता है कि हमारे जीवन में यह सभी बातें आज इक्कीसवीं सदी में बहुत प्रेक्टिकल है, बहुत जरूरी है। प्रसंग और विचार तो बहुत बड़ा है लेकिन 'जनम एक दुइ कहउँ बखानी।' वहां शंकर ने पार्वती को कहा, मैं एक-दो जनम की कथा तुम्हें सुनाउं, सावधान होकर सुनना। खास शब्द यूझ किया है, सावधान होकर सुनना। फिर 'अयोध्याकांड' में कहते हैं-

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि।
भरत कथा भव बंध बिमोचनि।।

भरत की कथा संसार के बंधनों से मुक्त करती है। सावधान होकर सुनिएगा।

नवधा भगति कहहु तोहि पाहीं।
सावधान सुनु धरु मन माहीं।।

और भगवान जब शबरी के सामने नव प्रकार की भक्ति कहते हैं, तो 'सावधान' शब्द लगाते हैं। तो जहां-जहां 'सावधान' शब्द आया है उसको लेकर चर्चा करेंगे। ये कोई उपदेश नहीं है। आपसे मेरी टोक है, खुली। आप सब जानते हैं, न उपदेश है, ये टोक है। लेकिन 'सावधान' शब्द में सबकुछ है। बेटा बाहरगांव जाए। बेटी बाहर जाए अथवा तो अमरिका में पढ़ती हो। आप फोन करो तो आप कहते हो ना बेटा, ध्यान रखना। ध्यान रखना मानी सावधान रहना। ये संदेश है, अपना ध्यान रखना। बेटी कहे कि मैं छुट्टियों में जा रही हूं मेरी फ्रेन्ड है उसके साथ। माँ-बाप कहे, ध्यान रखना मानी सावधान रहना। ये संदेश है। उपनिषद से या 'श्रीमद् भागवत' से या 'मानस' से या तो कहीं अत्र-तत्र से उपदेश मिले। यदि 'सावधान' शब्द को लेकर हम अपने मन को सावधान करे तो वो उपदेश है। और कोई कहे, 'सावधान', तो वो आदेश भी है। तो एक 'सावधान' शब्द संदेश यानी मेसेज; दूसरा उपदेश यानी जानी हुई बातें तुम तक पहुंचाने की कोशिश और तीसरा हुक्म, आदेश। 'सावधान' शब्द त्रिवेणी है। 'सावधान' शब्द यदि समझ में आ जाए 'मानस' का तो त्रिवेणी-तीर्थ है। 'सावधान' शब्दब्रह्म त्रिवेणी-स्नान है। त्रिवेणी संगम का यह बहुत व्यापक अर्थ है। तो मुझे लगा कि मैं भी सावधान रहूं। आपको भी सावधान रखूं। पहले मैं सावधान रहूं फिर आपसे बातें करूं। और जीवन में सावधान रहने की बात केन्द्र में रखते हुए जो 'मानस' के आधार पर सावधान का सात्त्विक-तात्त्विक अर्थ क्या है, वो गुरुकृपा से मुझे जो आएगा सो मैं आपसे कहूंगा। मैं कुछ खिंचतान करके नहीं लाता। आया तो कहूं, न आया तो हरिइच्छा! कोई तैयारी तो नहीं है! बोलेंगे।

तो मूल विषय रहेगा, 'मानस-सावधान।' और न कोई उपदेश मुझे आपको देना है। बस, हम अपनेआप को सावधान करे ताकि हम सत्य की राह पर ठीक से चल सके। जितना भी चल सके। पूरा का पूरा सत्य तो हम निर्वहण नहीं कर सकते। लेकिन आशिष, धर्म मानी नृत्य। तेरा दादा नृत्य करता था। बाबुभाई नाचता था। धर्म नर्तन है। बुद्धपुरुष का काम तो है नर्तन करा देना, घुंघरूं बांध देना। मैं रसेश को भी कह रहा था। मैं राधेश्याम को जब भी कहूं, जितने लोग बैठे हो, कहूं, राधेश्याम, ठुमका लगा, तो राधेश्याम ठुमका लगाए। लेकिन बाबुभाई को मैं जब भी कहता कि बाबुभाई, 'वांके अंबोडे श्रीनाथजी', तो पचास हजार की मेदनी हो तो भी बाबुभाई नाचने लगते! धर्म नृत्य है। धर्म मुस्कुराहट है। धर्म प्रसन्नता है। धर्म एक-दूसरे के प्रति वफ़ादारी है। धर्म इमानदारी का नाम है। लेकिन ये सब बातें हमारे धर्म में है। जो-जो धर्म है उसमें है। इसीलिए सावधान होकर सुनिएगा। सावधान होकर गाईएगा। क्योंकि धर्म को हमने एक फ्रेम में मढ़ लिया है! क्या धर्म की दशा हमने कर दी! 'धर्म' तो एक कितना पवित्रतम शब्द है सत्य, प्रेम करुणा। आप सब जानते हैं, मैं बार-बार दोहराता हूं, मेरी पूरी यात्रा पचपन, छप्पन, सत्तावन साल की यात्रा का निचोड़ है सत्य, प्रेम और करुणा। और उसमें जिस युवक को निष्ठा है, वो धर्मसार जानता है।

मैं निमंत्रित करता हूं इन युवान भाई-बहनों को जितना सुन पाओ सुनो, कोई चिंता नहीं। लेकिन एक बार इधर मुंह भी कर लेना। ध्यान रखना, ऋषिमुनियों को परमात्मा का दर्शन कानों से हुआ है, आंखों से नहीं हुआ है। आंखों से तो वैज्ञानिकों को दर्शन होता है कि यह ग्रह यहां लटक रहा है। ये ग्रह यहां है। ये मंगल है, ये चांद है, ये फलां है। वैज्ञानिक आंखों से सत्य को देखता है, ऋषि-मुनि, साधु-संत कानों से सुनकर परमात्मा को प्राप्त करते हैं। इसीलिए 'सावधान सुनु सुमति भवानी।' सुनना है एक-दो शब्द भी उस पर विचार करो, सोचो। दिल तक बात पहुंचेगी तो जीवन में विशेष आनंद आएगा, बहुत प्रसन्नता रहेगी और आप जीवन को एन्जोय कर सकोगे।

तो बाप, कोई भी विचार आप के हो, आपका स्वागत है। मेरी व्यासपीठ सब को आदर देती है। आपके

साथ मैं संवाद करता हूं। आपके प्रश्नों का मेरे दिमाग में आए, मेरे अनुभव में आए ऐसा जवाब देने की कोशिश भी करूंगा। आप से यह मेरी टोक है, बातचीत है। प्रसन्नता धर्म है। दूसरों को प्रसन्न करना, दूसरों के चेहरे पर मुस्कुराहट प्रदान करना धर्म है। और दूसरे की आंख में कभी बीमारी, रुग्णता, कभी अभाव, कभी गरीबी के आंसू गिरे और तुम्हारी आंख में भी तभी आंसू आए वो धर्म है। धर्म केवल किताबों में नहीं है। धर्म आदमी के कलेजे में है। यद्यपि किताब अद्भुत है। उसके मारग से हमें मार्ग मिलता है। लेकिन धर्म तो कलेजे को छुनेवाली एक अद्भुत रीत है।

हम संवाद करेंगे 'मानस-सावधान' के माध्यम से। आईए, फिर से दो पंक्तियां आप ठीक से सुने और गाईए। एक पंक्ति है 'बालकांड' की और एक पंक्ति है 'अयोध्याकांड' की। आप ठीक से सुनो और प्रेम से गाईएगा। एक बार और गा लो। हम सफलता से गा लें, जो मन में उतरे ऐसा गा लें। ब्रिटन का वो महाकवि कालरिज, उसका एक लेख मैं पढ़ रहा था। कहते हैं, उसने हजारों कविताएं लिखी है। कमरा का कमरा भरा हुआ है किताबों से! उसके मित्र लोग आ गए। वो मरने के कगार पर था और कहे कि कविता पूरी तो करो। इतनी अधूरी छोड़े हो? तो उसने जवाब दिया, जो सहज उतरता है वो मैं लिखता हूं। मैं पूरी करने जाउंगा तो गंगा में गंदा नाला मिल जाएगा, अशुद्ध हो जाएगा। मेरे भाई-बहन, जैसे उतरे सहज। शास्त्र कहता है, 'उत्तमा सहजावस्था', ऐसे सहज सुनो। जैसे सहज उतरने दो। कालरिज कहता है कि कविता उतरती है फिर बंद हो जाती है तो मैं छोड़ देता हूं। कभी-कभी तो दो ही पंक्ति बाकी होती है कि पूरी हो जाए लेकिन वो दो पंक्ति फिर उतरती नहीं! कितनी कविताएं ये आदमी अधूरी छोड़कर मरा है! उसने कहा कि मैं अपनी ओर से जब दो पंक्तियां एड करने गया तो मुझे पता लगा ये कविता जमती नहीं! ये तो उतरती है। उतरने दो, कोई प्रयास नहीं। रुधिराभिसरण के लिए हम कोई प्रयास नहीं करते। बीमारी हो और करना पड़े ये बात और है लेकिन धमनी और शिरा में रक्त बहता रहता है। स्वाभाविक रात को सो जाते हैं, सांस चालू रहती है, स्वाभाविक। हमें पता नहीं है, पलकें झुकती बंद होती स्वाभाविक। जीवन का अर्थ है सरलता, स्वाभाविकता। और जब हम प्रयास करके, दंभ करके, नाटक करके, पाखंड करके कुछ जोड़ने जाते हैं तो दूसरेवाला ये धोखा खा लेता है लेकिन हमको तो पता होता है कि ये हमारा पाखंड है, ये हमारा दंभ है!

तो, 'मानस-सावधान'; इक्कीसवीं सदी में जीने के लिए सावधान एक मंत्र बन सकता है। यद्यपि 'राम-कृष्ण-हरि' या हमारी परंपरा में आए कोई भी मंत्र अद्भुत है, अलौकिक है, ठीक है लेकिन जीवन को जीने के लिए सावधान भी हमारे जीवन का एक मंत्र बन सकता है। और जो सावधान हो गया उसको समाधान तुरंत मिल जाता है। जीवन की कठिन से कठिन समस्याओं का समाधान भी आदमी थोड़ा सावधान रहे तो प्राप्त कर लेता है। तो पूरी कथा केन्द्रित होगी इस मंत्र पर। और कौन-कौन बातें आए मुझे खबर नहीं! लेकिन अभी तो मेरे मन में है कि मैं थोड़ा भरतचरित्र का, प्रेमचरित्र का स्पर्श करूं। और भगवान शबरी को कहते हैं, मैं नवधा भक्ति कहूं और आप उसको सावधान होकर सुनो। तो उसी को मैं स्पर्श करूं। फिर मुझे कुछ खबर नहीं कि कब कहां बहा जाए, कौन बहा दे, पता नहीं! लेकिन मेरे मन में ऐसा है कि उस पर हम कुछ विशेष रूप में साथ बैठकर इन दिनों में बातें करेंगे ताकि हम विशेष रूप में सावधान रहे।

'रामचरित मानस' के बारे में तो और क्या कहना? आप सब जानते हैं। आपके घर में ही 'रामचरित

माँ-बाप बच्चें को कहे, ध्यान रखना मानी सावधान रहना। ये संदेश है। उपनिषद से या 'श्रीमद् भागवत' से या 'मानस' से या तो कहीं अत्र-तत्र से उपदेश मिले। यदि 'सावधान' शब्द को लेकर हम अपने मन को सावधान करे तो वो उपदेश है। और कोई कहे, 'सावधान', तो वो आदेश भी है। तो एक 'सावधान' शब्द संदेश यानी मेसेज; दूसरा उपदेश यानी जानी हुई बातें तुम तक पहुंचाने की कोशिश और तीसरा हुक्म, आदेश। 'सावधान' शब्द त्रिवेणी है। 'सावधान' शब्द यदि समझ में आ जाए 'मानस' का तो त्रिवेणी-तीर्थ है। 'सावधान' शब्दब्रह्म त्रिवेणी-स्नान है।

मानस' नहीं, जहां तक संभव है, घट तक पहुंचा है 'रामचरित मानस।' आप सब जानते हैं कि 'मानस' की कथा का रूप क्या है, स्वरूप क्या है। फिर भी एक प्रवाही परंपरा का निर्वहण करता रहता हूं कि इसमें सात सोपान है-'बाल', 'अयोध्या', 'अरण्य', 'किष्किन्धा', 'सुन्दर' 'लंका' और 'उत्तर।' सात सोपानों में ये सद्ग्रंथ ग्रंथस्थ है। 'बालकांड' प्रथम सोपान जिसका मंगलाचरण गोस्वामीजी ने सात मंत्रों में किया है।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।
वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ।।

ऐसे सात मंत्रों में मंगलाचरण हुआ है। फिर तुलसी ने संस्कृत भाषा को इतना आदर देने के बाद लोकबोली में, ग्राम्यगिरा में, देहाती भाषा में सामान्य से सामान्य आदमी भी धर्म के सार को समझ सके, देहाती, गांव का आदमी धर्म के सूत्र को समझ पाए, राम को समझ पाए, सीता को समझ पाए, इसलिए सरल बोली में, देहाती बोली में उसने कथा की रचना की। पांच सोरठें लिखे। पांच सोरठें में पांच देवताओं का स्मरण किया है। गणेशजी, माँ भवानी, भगवान विष्णु, भगवान शिव और सूर्य ये पांचों का स्मरण तुलसीजी ने किया। जो हमारी एक प्रवाही परंपरा है। और जो मैं अक्सर कहता रहता हूं, फिर दोहराता हूं। हमारा धर्म कहता है तो गणेश मानी हम गणपति की पूजा करें। महाराष्ट्र में तो गणेश का कितना उत्सव होता है! हम सब जानते हैं। ये तो करे ही करे चलो, लेकिन गणेशपूजा का मेरा स्पष्ट अभिप्राय ये रहा है कि गणेश विवेक के देवता है। हम विवेक का आदर करे कि औरों के साथ कैसे बोला जाए, कैसे बातचीत की जाए। माता-पिता के साथ, भाईयों के साथ, मित्रों के साथ, दीन-हीन लोगों के साथ कैसे विवेक से हम जीयें ये गणेशपूजा है मेरी दृष्टि में। हमारी तकलीफ़ क्या है, हम गणेश की पूजा करके विसर्जन भी कर सकते हैं लेकिन विवेकरूपी गणेश का विसर्जन कभी मत करिएगा। जो विवेकरूपी गणेश को विसर्जित कर देता है तो बचेगा क्या? अविवेक, अज्ञान, मूढता, स्वच्छंदता, उसके अलावा हमारे हाथ में कुछ नहीं बचेगा। गणेश की पूजा मेरी दृष्टि में ये धर्म का सार है विवेक को बरकरार रखना। और याद रखिए मेरे भाई-बहन, विवेक आता है सत्संग से। सत्संग मानी सज्जनों की कंपनी से, सज्जनों के संग से विवेक आता है। संतों के संग से विवेक आता है, ऐसा 'मानस' का सूत्र है।

तो विवेक को हम संभाले रखें। सूर्य की पूजा करो, सूर्य को प्रणाम करो। सूर्य को नमस्कार तो आज योगा में भी है। शरीर के लिए भी अच्छा है। सूर्य को जल चढाएं आदि-आदि लेकिन उसका सार भी मुझे समझ में आया कि सूर्य की उपासना मानी प्रकाश की उपासना। उजाले में रहने का शपथ, प्रकाश में जीने का संकल्प ये है सूर्य की उपासना। एक सौ आठ सूर्य नमस्कार आप करे तो अच्छी बात है लेकिन उम्र होने के बाद एक सौ आठ ना कर पाए, एक भी न कर पाए तो धर्म चुक गए ऐसा मत समझना। बस, बूढ़ापा उजाले में बिताए ये सूर्य उपासना है। हमारी वृद्धावस्था अंधेरे में न जाए ये सूर्य की उपासना है। भवानी की जैसे नवरात्रि हम मनाते हैं। भवानी श्रद्धा का रूप है। हमारी श्रद्धा टूटे ना, हमारा

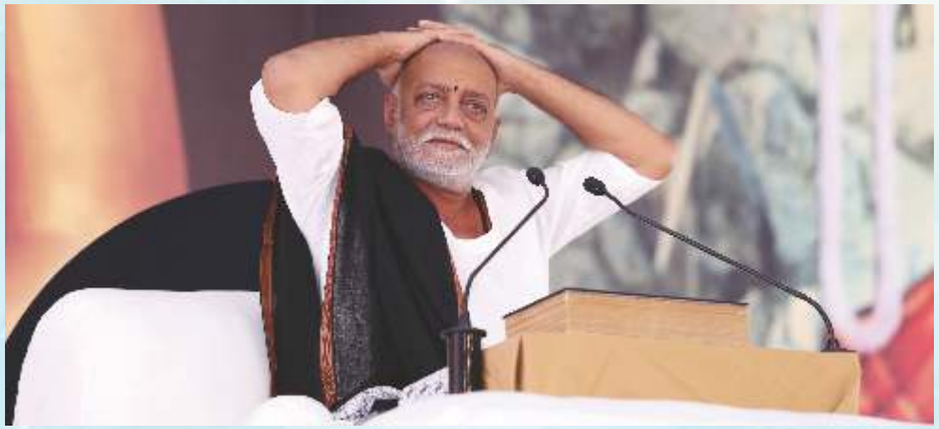

भरोसा टूटे ना। पुष्टिमार्ग में, श्रीमद् वल्लभ परंपरा में गातें हैं-

दृढ इन चरनन केरो भरोसो, दृढ इन चरनन केरो,
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिन, सब जग मांहे अंधेरो ...

मेरा तो मंतव्य है, भरोसा ही भजन है। एक यकीन, एक निष्ठा कहीं तो रखनी पड़ती है। तो बाप, नवरात्रि तो मनाना ही मनाना लेकिन अपनी श्रद्धा को बरकरार रखना। अंधश्रद्धा नहीं, श्रद्धा। और फिर शिव की उपासना। शिव का अर्थ होता है कल्याण। जितना हमसे हो सके दूसरों का शुभ सोचे ऐसा हम करे। दूसरों का शुभ हो तो ये शिव अभिषेक हो जाएगा। और विष्णु की पूजा, विष्णु का अर्थ है व्यापक, एकदम आकाश की तरह विशालता। हमारा विचार, हमारा दृष्टिकोण हम संकीर्ण न रखें, संकुचित न करें। दूसरे के विचारों का भी हम स्वागत करे। ऐसे विशाल विचार दृष्टिकोण ये विष्णुपूजा है, ऐसा मेरे घाट को समझ में आता है। ऐसे पंचदेव की स्मृति की गई और गुरुवंदना से कथा का आरंभ होता है। तुलसी लिखते हैं-

बंदउँ गुरुपद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर।।

गुरुवंदना से रामकथा का प्रारंभ होता है। गुरु के कई प्रकार है बाप! बहुत से प्रकार हम कह सकते हैं। मुख्य-मुख्य सोचें। एक होता है दीक्षा गुरु, जो हमें दीक्षा देता है। मंत्र देता है, जैसे वैष्णवों में ब्रह्मसंबंध देता है। दूसरा गुरु का नाम मुझे देना हो तो मैं ये भी कह सकता हूं कि दिशागुरु, जो हमें दिशा दे कि तू ऐसा कर बेटा। तुम्हें मूर्तिपूजा में कोई रस नहीं, कोई बात नहीं। कोई गरीब बालक रो रहा है उसे मुस्कुराहट दिला दे, तेरी मूर्तिपूजा हो गई। तेरी आरती हो गई। दीक्षागुरु तो कभी दक्षिणा भी मांगेगा। जबरदस्ती भी लेगा, तुम्हें देनी पड़ेगी ये दक्षिणा! लेकिन दिशागुरु जो होगा वो कभी दक्षिणा नहीं मांगेगा। वो तो तुम्हें गाईड करके चला जाएगा। तुम्हें मार्गदर्शन देकर कि बस तुम्हारे लिए ये रास्ता है। यहां से जाओ और ठीक न लगे तो लौट आना। एक होता है विद्यागुरु, जो हमें विद्या दें, हमें पढ़ाएं, सिखाएं, कोई भी सब्जेक्ट। एक विद्यागुरु होता है। एक होता है आश्रयगुरु, जो हमें आश्रय देता है। हम दीन-हीन है, कुछ सोच-समझ नहीं है लेकिन अपनी करुणामयी छाया में रखकर हमें पालता है। हमें पता भी न चले ऐसे आश्रयगुरु भी एक माना गया है। एक होता है अध्यात्मगुरु। उपनिषद की चर्चा, वेदान्त की चर्चा, किसी भी ग्रंथ की चर्चा, जहां से शुभ हो, सत्य हो उसकी, आत्म-परमात्म की चर्चा करता है वो है अध्यात्मगुरु। तो कई प्रकार के गुरु की बात की जा सकती है।

भारत अद्भुत है, ये देश महिमावंत है साहब! यहां किसीको पत्नी से अच्छी बातें मिली तो पत्नी को भी गुरु माना गया है। ये ऐसा देश है। पति से कोई सत्य प्राप्त हुआ तो पति को गुरु माना जाए। माता से कोई सत्य प्राप्त हुआ तो माँ को गुरु माना गया है। पिता को गुरु माना गया है। मित्र को गुरु माना गया है। जहां से हमको सत्य मिला उसको हमनें गुरुपद प्रदान किया कि ये हमारा गुरु है, ये हमारा मार्गदर्शक है। उससे मैंने सत्य पाया। उससे मैंने करुणा पाई। उससे मैंने प्रेम पाया। स्त्री भी गुरु बन सकती है। हमारे यहां गार्गी है, मैत्रेयी है। हमारे यहां मीरां है, लल्लादेवी है, सहजोबाई है, सौराष्ट्र की गंगासती है। सत्य मिलना चाहिए बस, तो पत्नी भी गुरु बन सकती है। यहां पहले गुरुवंदना है। गुरुचरणरज की वंदना है। गुरु चरणरज की ज्योति की महिमा है। गुरु चरणरज ये कृपा का प्रतीक है। तो बाप, पहला प्रकरण गुरुवंदना का आया। बहुत मुश्किल है गुरुगम। इसलिए हमारे प्राचीन भजनिकों ने भी गाया है-

गुरु तारो पार न पायो, हे, न पायो,
प्रथमीना मालिक, तमे रे तारो तो अमे तरीए...

गोस्वामीजी तो कहते हैं, 'रामचरित मानस' सद्गुरु है। तथाकथित गुरु का भी पार पाया जा सकता है, हो सकता है, खबर नहीं लेकिन 'रामचरित मानस' को जब सद्गुरु की उपाधि दी है तब मैं बहुत पक्की श्रद्धा से कह सकता हूं कि ये गुरु का कोई पार पा नहीं सकता। कोई पार ही नहीं पा सकता। अपार है यह शास्त्र! कितना खुलता है गुरुकृपा से! अनंत लगता है, अद्भुत लगता है, अलौकिक लगता है। तो गुरु जो हमें हमारे मूल स्वरूप का बोध कराए, हमें अपना खयाल बता दे ऐसे गुरुजनों की वंदना की है। और फिर गुरुकृपा से जिसकी आंख पवित्र हो चुकी है वो किसी की निंदा नहीं कर सकता, वंदना ही करता है। गुरुचरणरज से दृष्टि पवित्र हुई तो पूरी दुनिया, पूरा ब्रह्मांड वंदनीय लगा और तुलसी की ये प्रसिद्ध पंक्ति-

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

नरसिंह मेहता ने भी गाया-

सकल लोकमां सहु ने वंदे, निंदा न करे केनी रे।

पूरा जगत ब्रह्ममय दिखने लगे। कितनी प्यारी अवस्था होगी! कितने नीरोगी और स्वस्थ चित्त होंगे वो लोग जो किसी की बुराई नहीं देखते, किसी का छिद्रान्वेषण नहीं करते। सब की वंदना की। उसके बाद माताओं की वंदना, दशरथजी की वंदना, जनकजीकी, भाईयों की वंदना करते-करते हनुमानजी की वंदना तुलसीदासजी करते हैं-

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।

राम जासु जस आप बखाना।।

तुलसी कहते हैं कि जिसके हृदय में सीताराम निवास करते हैं ऐसे हनुमान को मैं प्रणाम करता हूं। कोई भाई हो, बहन हो, बच्चा हो जिसके हृदय में हराम न दिखे वो हनुमान है। हनुमानजी अजर-अमर ऐसे ही सिद्ध होगा कि वो अजर है, अमर है। मेरे भाई-बहन, हनुमंत का आश्रय करिए। हनुमानजी के बारे में बहुत उपासना पद्धतियां है। उसमें मत जाईएगा। आपने मांगी नहीं है सलाह लेकिन मैं देता हूं। यदि आपको हनुमानजी के प्रति भाव है, निष्ठा है तो आप हनुमानजी को चौपाईयां सुनाईए। 'वाल्मीकि रामायण' का कोई श्लोक सुनाईए। उनकी छाया में मैं बेठा हूं, ऐसा सोचकर प्रभु का जप कीजिए । हनुमंततत्त्व बहुत प्रसन्न होगा। तो हनुमानजी की कठिन-जटिल साधना में मत जाना प्लीझ! हनुमंततत्त्व शुद्ध सात्त्विक तत्त्व है। सात्त्विक तो कहना पड़ता है लेकिन हनुमंततत्त्व तो शुद्ध-बुद्ध गुणातीत है। त्रिगुण से मुक्त हनुमंततत्त्व है। तो हनुमानजी की वंदना कीजिए। 'विनय पत्रिका' के इस पावन पद की कुछ पंक्तियों से हम हनुमानजी की वंदना करें। आप सब को याद है, प्लीझ गाईएगा-

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।

सकल अमंगल मूल-निकंदन।।

पवनतनय संतन-हितकारी।

हृदय बिराजत अवध-बिहारी।।

'हनुमानचालीसा' में लिखा है, 'भूत पिसाच निकट नहीं आवे।' हनुमानजी का नाम लो तो भूत न आए। भूत नजदीक न आए इसका मतलब क्या है? 'हनुमानचालीसा' का पाठ करो तो भूतकालीन घटना तुम्हारा पीछा नहीं करेगी। फलां ने मुझे यह कहा था, ये हो गया, फलां हो गया! ये जो भूत हमारे पीछे लगे हैं! हनुमानजी का आश्रय करने से भूतकालीन घटना हमारा पीछा नहीं करेगी। भूतकालीन घटनाएं पीछा करके एक राक्षसी पंजा लेकर के हमें घीर रही है! भूतकाल छूटता नहीं। और प्रेत का अर्थ मैंने किया है भविष्य, भविष्य की चिंताए। क्या होगा, क्या होगा? हनुमंत आश्रय करने से आदमी वर्तमान में जी सकता है। हनुमंत वायु है। अभी है, वर्तमान में है। हनुमान निरंतर वर्तमान का नाम है। मूर्ति के रूप में हो या अमूर्त हो, कोई फ़र्क नहीं पड़ता। और मैं कई बार बोला हूं, कोई गुरु में निष्ठा न बैठे तो हनुमानजी को गुरु मान लेना। कोई झंझट ही नहीं! कभी दक्षिणा न मांगे, कभी ये न कहे कि तेरे घर पधरामणी करनी है! कभी ये न कहे कि मेरे पैर धो! कभी ये न कहे कि मुझे ये दो, ये दो! ऐसा परमतत्त्व श्री हनुमानजी है। देश का युवान हनुमानजी का आश्रय करे तो विद्यावान होगा। उसकी विद्या बढ़ेगी, उसका नोलेज बढ़ेगा। नोलेज क्या, विज़डम बढ़ेगा। तो श्री हनुमंत तत्त्व का आश्रय करना। हमारे पूजनीय दंतालीवाले स्वामीजी सच्चिदानंदजी महाराज, उसने 'हनुमानचालीसा' पर भाष्य लिखा। और उसने लिखा कि कोई माने न माने लेकिन 'हनुमानचालीसा' का मुझे चमत्कार हुआ है। मैं मानता हूं उसमें। मैं बहुत खुश हुआ। देर से ही सही लेकिन बड़ी प्यारी बातें उसने लिखी है। कहते हैं कि मेरे जीवन में मैं पूरी दुनिया में घूमा हूं और उसमें मुझे 'हनुमानचालीसा' से बहुत बल मिला है। 'हनुमानचालीसा' में बहुत ताकत है साहब! भरोसा चाहिए। और भरोसा हो तो कथीर भी सोना बन जाता है और न हो तो सोना भी कोई काम का नहीं! सवाल है भरोसे का। और कागबापू लिखते हैं-

एने भरोसे रहेवाय जी...

भरोसे रहेवाय पंडनुं डहापण नो डोळाय...

'काग' सघळा रोग नासे, कीधुं एम खवायजी;

वैद्य घरनां वाटेलां ते, ओसड केम ओळखाय?

वैद्य गोली दे वो खा लेनी चाहिए। उसमें क्या-क्या डाला ये हम नहीं पहचान पाएंगे। कुछ तत्त्व ऐसे हैं। हनुमानजी शंकर के अवतार है। ये हनुमंतत्त्व भरोसे का मूर्तिमंत रूप है। हनुमंतवंदना के बाद तुलसीदासजी सीतारामजी की वंदना करने के बाद नाम महाराज की वंदना करते हैं।

लौकिक दृष्टि से और अलौकिक दृष्टि से सावधान रहना

'मानस-सावधान', जो इस कथा का केन्द्रबिंदु है। बहुत से प्रश्न, जिज्ञासाएं उस पर आधारित है। यथासमय, यथाशक्ति कोशिश करूंगा आप से बात करने की। एक बात तो ये पूछी गई, वहीं से शुरू करूं कि सावधान और सहजता में कैसे मेल करें? बहुत प्यारा प्रश्न। बाप! यहां 'सावधान' शब्द का प्रयोग दो अर्थ में है। एक लौकिक, दूसरा अलौकिक। लौकिक अर्थ में 'सावधान' शब्द का प्रयोग हमारा जो दैनिक जीवन है उस संदर्भ में है कि उठने में सावधान, बैठने में सावधान, बोलने में सावधान, रोड क्रोस करने में सावधान, ज्वलनशील पदार्थों से दूर रहे, नज़दीक न जाए, सावधान। जो लौकिक कार्यकलाप हमारा है उस संदर्भ में सावधान। और एक बात याद रखना मेरे श्रावक भाई-बहनों, कल व्यासपीठ से कहा गया कि सावधान त्रिवेणी है। उसमें कोई मेसेज भी है, संदेश भी है। पोस्टमेन हमारे घर पर डाक लाकर देता है तो उसमें संदेश होता है। पोस्टमेन का काम है संदेश देना। वो उपदेश नहीं देता। उपदेश देने का काम है आचार्यों का, धर्माचार्यो का। और आज्ञा यानी आदेश केवल आध्यात्मिक पुरुष दे सकता है। अथवा तो मेरे घाट का जो शब्द है, 'बुद्धपुरुष' दे सकता है। आदेश तो केवल कोई पहुंचा हुआ बुद्धपुरुष दे सकता है। जैसे अर्जुन को कह दिया बुद्धपुरुष भगवान कृष्ण ने 'सर्वधर्मान् परित्यज्य', छोड़ ये सब और ये दूसरा आदेश 'मामेकं शरणं व्रज।' केवल-केवल मेरी शरण में आ जा और वादा भी कर दिया 'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो', मैं तुझे सभी पातकों से मुक्त कर दूंगा, चिंता मत कर।

तो यहां जो 'सावधान' शब्द का प्रयोग नव दिन होगा 'मानस' को आधार बनाकर। ये प्रस्थानत्रयी है। उसका एक एंगल है संदेश। दूसरा है उपदेश। तीसरा है आदेश। तो 'सावधान' शब्द एक तो लौकिक अर्थ में, दूसरा अलौकिक अर्थ में, आध्यात्मिक अर्थ में। पूछा गया है, सहजता उसमें सावधान कैसे बरते? जैसे सूफ़ी लोग कहते हैं, झेन लोग कहते हैं, सहज रहो। बैठना है, बैठो। मैंने भी कल कहा, 'उत्तमा सहजावस्था।' फिर उसमें सावधानी कैसे बरते, ये बड़ा प्यारा प्रश्न है, प्यारी जिज्ञासा है। हमारी तकलीफ़ क्या है कि हम कोशिश करते हैं कि हम सहज बने रहे। हम सहज है। ओलरेडी जनम-जनम से सहज है। हम अनंतकाल से सहज है। 'चेतन सहज अमल सुखरासि।' ये जीवमात्र सहज है। जैसे मैं बोल रहा हूं, मुझे सांस के लिए कुछ करना नहीं पड़ता। मेरी सांस साथ-साथ चल रही है। आप सुन रहे हैं, आपकी सांस सहज चल रही है। सहज हमारा अधिकार है। सहज हमारा स्वरूप है। सहज हमारा आदि-अनादि रूप है। वो सहजता मिट न जाए इसलिए प्लीझ सावधान! मेरे भाई-बहन, जैसे यहां आध्यात्मिक दृष्टि में सावधानी का प्रयोग करूं तो मैं कृष्णमूर्ति को याद करूंगा, अवेरनेस, जागृति। सावधानी मानी आध्यात्मिक अर्थों में जागृति। न सपना, न नींद। सपनें देखना हमारा अधिकार है, देखने चाहिए। पूरे हो न हो, अल्लाह जाने! हम जीव हैं, हमें निद्रा लेनी चाहिए। लेकिन कितनी लेनी है उस पर जागृत रहना चाहिए। सपनें कितने देखने हैं उसके लिए जागृत होना आवश्यक है। उसी जागृति को मेरा घाट सावधानी कहता है। हमारी सहजता खंडित न हो इसीलिए सावधान।

तो बड़ा प्यारा प्रश्न पूछा है। हम नौ दिन इसकी बातें करेंगे। हमारा मूल स्वरूप ही सहज है। हम असहज हो चुके हैं चार कारणों से। एक कारण है हमारा मन। दूसरा कारण है हमारी बुद्धि। तीसरा कारण है हमारा चित्त। चौथा कारण है हमारा अहंकार। इसकी वजह से हम असहज हो चुके हैं, जो स्वभाव विरुद्ध है। धर्मान्तर कर रहे हैं! परधर्म में जी रहे हैं इसीलिए भगवान कृष्ण एक आदेशात्मक रूप में बात करते हैं, 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः।' तेरे धर्म में मौत को मिल जा अच्छा है, परधर्म में मत जा। परधर्म में मानी तेरी सहजता न छोड़। कबीरसाहब तो 'सहज' शब्द पर ही पूरी जिंदगी जिए हैं। तो हम और आप मन से सावधान रहे। हम और आप बुद्धि से सावधान रहे। हम और आप चित्त से सावधान रहे। हम और आप अहंकार से सावधान रहे।

मैं बार-बार कहता हूं, कथा धर्मशाला नहीं है, प्रयोगशाला है। हम प्रयोग किए जा रहे हैं। भगवान को चिंतन प्रिय है। ईश्वर चिंतन प्रिया है। यहां महाप्रभुजी आश्रित पुष्टिमार्गीय समाज ज्यादा है। महाप्रभुजी का एक स्तोत्र है 'मधुराष्टक।' उसमें एक पंक्ति है, 'गुंजा मधुरा।' गुंजा मानी चणोठी की माला भगवान धारण करते हैं। पवित्र एकादशी के दिन महाप्रभुजी ने गुंजा की माला ठाकुरजी को पवित्र भाव से अर्पण की थी। वैष्णवों ने बारस के दिन दर्शन किया था। इसीलिए पवित्रा बारस आ गई। बाकी मूल तो एकादशी के दिन ये पवित्रा धारण किया था। ऐसी बात महाप्रभुजी के दर्शनों में मिलती है। संस्कृत ग्रंथों मे गुंजा का एक अर्थ होता है चिंतन। परमात्मा को चणोठी की माला बहुत प्रिय है, मधुर है। इसका मतलब कोई भी भक्त का चिंतन प्रभु को प्रिय है। तो यह सहचिंतन है। 'सहचिंतन' विनोबाजी का शब्द है। विनोबाजी कहते हैं, सहचिंतन होना चाहिए, सहसाधना होनी चाहिए, सहखेती होनी चाहिए, सहजीवन होना चाहिए आदि-आदि। तो प्रभु को चिंतन प्रिय है। ये 'चिंतन' शब्द आया तो कुछ और कहूं। महाप्रभुजी कहते हैं, चिंतन से स्नेह प्रगट होता है। आप और हम किसी के बारे में बहुत चिंतन करने लगते हैं फिर स्नेह शुरू होता है। कोई हमें कहे कि फलां आदमी ऐसा है, फिर हमारा चिंतन शुरू होता है, कैसा होगा, कब मिलेंगे, कहां मिलेंगे? और फिर स्नेह शुरू हो जाता है। और स्नेह स्निग्ध होता है। स्नेह का मतलब है चिपके रहना। स्नेह से प्रणय प्रगट होता है। प्रणय का मतलब है, जिससे हमारा स्नेह है उसमें हमारा पूरा भरोसा है बस। हम तो 'प्रणय' शब्द का प्रयोग करते हैं साहब, लेकिन उसका अर्थ नहीं समझते! महाप्रभुजी एक कदम और आगे बढ़ते हैं कि प्रणय के बाद मान प्रगट होता है, अभिमान प्रगट होता है कि हमारा प्रेम है, प्रणय है तो ये व्यक्ति दूसरे से प्रेम न करे। ये किसी से बात करे तो रुठ जाए!

मुझे जितनी जरूरत थी वो उतना हो गया मेरा।
उसके आगे वो किसका हुआ वो खुदा जाने या वो जाने।

-राज कौशिक

मुझे जितनी जरूरत थी बुद्धपुरुष की वो उतना मेरा हो गया फिर वो किससे बात करता है, किसके पास जाता है ये वो जाने या ईश्वर जाने। मुझे जितना हरि चाहिए वो मुझे मिल गया। प्रणय के बाद आता है मान। मान के दो अर्थ है, अभिमान भी और गौरव भी। मेरा इस आदमी से प्रणय है उसका गौरव है। ये भी एक मान है कि हमारी प्रीत किससे? ठाकुरजी से। हमारी महोब्बत किससे? श्रीनाथजी भगवान से। हमारी शरणागति श्रीमन् महाप्रभुजी के चरणों में। ये गौरव, उसको भी मान कहते हैं। लेकिन ये तो भूला जा रहा है! दूसरा ही मान कि दूसरे से बात कैसे की, दूसरे से मिले क्यों आदि-आदि। राज

कौशिक का यह शे'र याद रखिए। परमतत्त्व स्वतंत्र है। मान के बाद राग प्रगट होता है। जैसे हम कहते हैं ना अंधेरे से उजाले की और ले चल। असत् से सत की ओर ले चल। मृत्यु से अमृत की ओर ले चल। यात्रा भी राग से ही अनुराग की ओर हो सकती है। बिना राग अनुराग की यात्रा फ़लदायी नहीं होती। उसके बाद महाप्रभुजी कहते हैं, अनुराग प्रगट होता है। वहां महाप्रभुजी और चैतन्य दोनों एक हो जाते हैं। एक नदी उमड़-घुमड़कर समंदर में मिलने के लिए दौड़ी जाती है। उसके बाद जो एक पडाव है उसको कहते हैं उन्माद भाव। पता न चले ऐसे विगलित हो जाना। तो मन से सावधान क्योंकि मन हमें सहज नहीं रहने देता। बुद्धि व्यभिचारिणी हो जाती है। सहज नहीं रहने देती। चित्त में जनम-जनम का खबर नहीं, क्या-क्या डाला गया है! वो हमें सहज नहीं रहने देता। अहंकार हमें सहज नहीं रहने देता। इसीलिए मेरा मतलब सावधान का है मन से सावधान।

सावधान मन करि पुनि संकर।

यह तुलसी का आध्यात्मिक दर्शन है। शंकर भगवान तुरंत मन से सावधान और शबरी को भी भगवान यही कहते हैं, 'सावधान सुनु धरु मन माहि।' आध्यात्मिक जगत में सावधान मानी मन से सावधान। मन के विचारों से सावधान। मन के संकल्प-विकल्पों से सावधान। मन के तरंगों से सावधान। फिर बुद्धि से सावधान। यह भी 'रामायण' में लिखा है-

जनम एक दुई कहउँ भवानी।
सावधान सुनु सुमति भवानी।।

हे पार्वती, मन से सावधान। बुद्धि से सावधान। अभिमान से सावधान। 'सावधान मानद मद हीना।' अहंकार से सावधान, चित्त से सावधान। आपने शायद सुना होगा, सोचा होगा, 'गीता' में ऐसा कहा गया है कि आदमी मरता है, दूसरा जनम लेता है तो मन वही का वही पुराना साथ-साथ चलता है। हमारी वाणी मन के कारण होती है। प्रत्येक व्यक्ति का मन जैसा होगा वाणी वैसी निकलती है। मन का वाणी से संबंध है, बुद्धि और कान का संबंध है। जनम-जनम की यात्रा में जो हमारी बुद्धि है उसका कान से संबंध है। बुद्धि वही सुनती है जो हमारे लाभ में हो। चित्त का रिश्ता चक्षु से है, ध्यान देना। साधक की आंख देखना, चित्त का पता लगेगा। चक्षु से एक सेतु है, एक लिंक है। रामकृष्ण की आंख देखने से पता लगता है ठाकुर का चित्त कितना निर्मल होगा? महर्षि रमण की आंख देखने से पता लगता है। मीरां की आंख देखने से पता लगता है, गिरधारी से कैसा नाता रहा होगा? चित्त और चक्षु का मेल बैठता है। चित्त से सावधान मतलब चक्षु से सावधान।

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि।
भरत कथा भव बंध बिमोचनि।

'अयोध्याकांड' में जनकराजा के यह वचन है अपनी धर्मपत्नी के सामने कि हे सुनयनाजी, हे सुंदर मुखवाली और हे सुलोचनी, चित्त से सावधान। मान से सावधान यानी अहंकार से सावधान। लौकिक अर्थ तो है, रास्ता क्रोस करने में सावधान, यह खाने में सावधान। ये सब में सावचेत रहो। लेकिन अध्यात्मजगत में मन से सावधान क्योंकि मन बहुत संकल्प-विकल्प करके हमारी सहजता को लूंट रहा है। इसीलिए संतों ने मन पर बहुत काम किया।

मेरे श्रोता भाई-बहन, आध्यात्मिक अर्थ में मन से सदा सावधान रहियो। बुद्धि कहीं व्यभिचारिणी न हो जाए। सावधान रहियो। चित्त से सावधान। छोटी-बड़ी उपलब्धियों का अहंकार आ जाता है। हे साधक, अहंकार से सावधान। ये आध्यात्मिक पक्ष है, अलौकिक पक्ष है। जिसने पूछा है, सहजता और सावधान का कैसे मेल करे? फिर एक बार दोहरा रहा हूं, हमारा स्वरूप सहज है। ये असहज न हो जाए मन के कारण, बुद्धि के कारण, चित्त के कारण, अहंकार के भी कारण इसीलिए सावधान। इस तरह इस कथा के उद्देश को हम समझें।

एक प्रश्न बड़ा प्यारा है, ''जयश्री कृष्ण, जय सीयाराम। मैं वल्लभ आश्रित परिवार का युवक हूं। अभी पढ़ता हूं। हमारे घर में ठाकुरजी की सेवा है। परिवारवालें शादी के लिए दबाव डाल रहे हैं। मैने पूछा, हमारा संप्रदाय शादी के बारे में क्या कहता है, तो परिवार वाले कुछ जवाब नहीं देते हैं और डांटते हैं कि शादी कर ले!'' मैं डाटूंगा नहीं, सावधान! बेटा, तुम्हारे परिवारवालें तुम्हें वल्लभ दर्शन में समझा रहे हैं तो मैं कोशिश करूं। वैष्णव युवक, सुन, महाप्रभुजी ने शादी करने की मना नहीं की है। क्योंकि स्वयं शादीशुदा थे। एक गृहस्थ है महाप्रभुजी।

उसके लालन भी है, आप सब जानते हैं। गोसाई महाराजजी और उसकी परंपरा आज तक भी आचार्यों के रूप में हमारे संसार में पूजनीय है। महाप्रभुजी स्वयं गृहस्थ है इसीलिए वो ऐसा नहीं कह सकते कि तुम शादी न करो। लेकिन महाप्रभुजी सावधान करते हैं। वैष्णव परिवार से तू आता है बेटा, तो यह तो तेरे माता-पिता को पता होना ही चाहिए लेकिन तेरे माता-पिता ने नहीं पढ़ा होगा महाप्रभुजी को ठीक से वर्ना महाप्रभुजी सावधान करते हैं-

अनुकूले फलत्रादौ विष्णुकार्येणि कारयेत्।
उदासीने स्वयं कुर्यात् प्रतिकूले गृहं त्यजेत्।

महाप्रभुजी शादी की मना नहीं करते हैं। सावधान करते हैं कि शादी करो लेकिन तेरी पत्नी तेरे परिवार सब अनुकूल हो तो भगवद्सेवा करो। महाप्रभुजी ने सेवा के तीन फल बताए हैं। अलौकिक सामर्थ्य आता है सेवा से। 'सेवायां फलत्रयम्...' महाप्रभुजी ने तीन प्रकार के सेवा के फल पुष्टिमार्ग में बताए हैं। लौकिक सामर्थ्य; आपके पास जमीन कितनी है, पैसे कितने है, यह लौकिक सामर्थ्य है। वो भी जरूरी है। लौकिक सामर्थ्य कितना भी हो, सीमा में आबद्ध है। आप चाहो वो नहीं कर सकते। तुम्हारी मर्यादा आ जाती है। ठाकुरजी की सेवा के कारण अलौकिक सामर्थ्य आता है। दूसरा फल सायुज्यम्। यदि मुक्तिमार्गी आप हैं तो आपको सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है। 'सेवोपयोग देहो', सेवा का फल है परमात्मा आपको सेवा उपयोगी शरीर प्रदान करेगा कि आप इस विग्रह से सेवा कर सको। फिर सेवा के विघ्न भी बताएं। पहला विघ्न है उद्वेग। आपको सेवा में रुचि है। आप जमुनाजी की सेवा करते हैं, महाप्रभुजी की सेवा करते हैं, द्वारकाधीश ठाकुरजी की सेवा करते हैं, बालकृष्ण की सेवा करते हैं, गिरिराज की सेवा करते हैं लेकिन उसका बाधक तत्त्व जो महाप्रभुजी ने स्वयं बताया है वो है उद्वेग। हमारे चित्त में जब उद्वेग है तो हम सेवा में जल्दी पाठ पूरा करो, यमुनाष्टक पूरा करो, निकलो, ऐसा करते हैं! परमात्मा ने लायकात से ज्यादा दिया है, औकात से ज्यादा दिया है, फिर चिंता क्यों करते हो?

उसने देखते ही मुझे दुआओं से भर दिया।
मैंने तो अभी सजदा भी नहीं किया था।

-राज कौशिक

मैंने तो चरणस्पर्श भी नहीं किया था, दंडवत् भी नहीं किया था, प्रणाम भी नहीं किया था और देखते ही दुआओं से लबालब भर दिया। हमारी कामनाएं उद्वेग देती है। उद्वेग सेवा का बाधक है। एक दूसरा शब्द आता है, प्रतिबंध। सेवा का तीसरा बाधक तत्त्व है पुष्टि परंपरा में भोग। मैं ये मतवादी नहीं हूं कि भोग न भोगे लेकिन भोग का अतिरेक बाधक है। जो भोग भगवान को भूला दे वो भोग रोग हो सकता है।

सेवाया: फलत्रयम् अलौकिक सामर्थ्यम्
सायुज्यम् सेवोपयोग देहो।

महाप्रभुजी हम सब को सावधान करते हैं कि तेरा परिवार अनुकूल है तेरे साथ। तुने शादी की है। तेरी बीवी, तेरे माता-पिता सब अनुकूल है तो ठाकुरजी की सेवा कर। तेरी पत्नी सहमत नहीं है कि तुम तीन घंटे सेवा में बैठे रहते हो, नाम जप करते हो, सुबोधिनीजी का पाठ करते हो, मधुराष्टक-यमुनाष्टक छोड़ते ही नहीं! और पत्नी नाराज हो जाए अथवा तो पति नाराज हो जाए तो महाप्रभुजी कहते हैं, ऐसे किसी पर गुस्सा मत करो, डांटो मत, 'उदासीने स्वयं कुर्यात्'। उसके भाग का तू कर। बहुत कठिन निर्णय है भाई, मैं उसमें सहमती नहीं दूंगा! महाप्रभुजी मुझे माफ़ करे! उसमें लिखा है, घरवाले प्रतिकूल हो तो घर छोड़ दो। घर छोड़ना नहीं, घर में रहकर उदासीन रहे, बस। मेरे तुलसी ने तो सिखाया, 'उदासीन नित रहीअ गोसाई।' लेकिन महाप्रभुजी ठीक कहते हैं कि घर छोड़ो। महाप्रभुजी का स्पष्ट आदेश है कि ऐसा है तो फिर छोड़ दो। जो कृष्ण विरोधी हो गया है उसको छोड़ो। मेरा तुलसी मोहर लगाते हुए कहते हैं-

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।।

जिसको राम-सीता प्रिय नहीं वो कितने भी प्रिय हो, उसको छोड़ो।

तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी।।

वहां महाप्रभुजी, तुलसी दोनों गोसाई एक हो जाते हैं। युवक, वैष्णव, महाप्रभुजी सावधान करते हैं कि बेटे

शादी करो, सावधान रहो। सब अनुकूल हो तो सेवा करो और सेवा में ध्यान रखना वैष्णवों, जयश्री कृष्ण, केवल ठाकुरजी की सेवा नहीं, ठाकुर की बनाई कायनात की भी सेवा। तुम्हारा ठाकुरजी राजभोग आरोगे और तुम्हारे नौकर के बच्चें एक खाखरा के लिए रोते हो तो ठाकुरजी राजभोग कबूल नहीं करेंगे। ये दो-टूक बात है। छप्पन भोग की महिमा है। श्रीनाथजी की ध्वजा पधारती है। मैंने भी ऐसे उत्सव का दर्शन लाभ लिया है। और हवेली जैसा प्रसाद कहीं नहीं। ठाकुरजी मानी जगत और जगदीश दोनों की सेवा उसको याद रखें। हमारी भूख, भूख मिन्स हमारी आकांक्षाए, हमारी कामनाएं, मुंह फाड़ इच्छाएं, अनियंत्रित एषणाएं ठाकुर और दुनिया को बिलग कर देती है! राजभोग का मैं विरोधी नहीं हूं। राजभोग किसको अच्छा न लगे? ठाकुरजी को जितना लाड लडाओ, कम है। क्योंकि उसने हमको बहुत लाड लडाया है। लेकिन दीन-हीनों का क्या? ये आज के युवक जो हम धार्मिक नहीं है, ऐसी हिंमत जुटाकर कहने लगे क्यों? क्योंकि उन्होंने यह भेद देखा कि एक ओर जो खाता नहीं है उसके पास ढेर है और जो भूखा रहता है उसके पास सूखी रोटी भी नहीं है! ये भेद आखिर में आदमी को हिंसक बना देता है। ये जो सामाजिक विभक्तियां, सामाजिक दीवारों से हम टूटे जा रहे हैं! तिरस्कार, उपेक्षा, हटो, दूर रहो, अस्पृश्य, कब तक धर्म के नाम पर ये चलेगा? नयी पीढ़ी आ रही है, सावधान सामनेवाले! ठाकुरसेवा मिन्स ठाकुर की बनाई दुनिया की सेवा। ऐसी सेवा में परिवार सहयोगी है तो करो ठाकुरसेवा लेकिन जो सहयोगी न हो तो तू खुद कर। और फिर भी तुम्हें नोबत आए, विघ्न आए तो महाप्रभुजी कहते हैं, वो घर छोड़ दो। 'त्यत् त्यागेत् दूषणं नास्ति', आचार्य बोले तो कितना बल मिल जाता है? घर छोड़ दे तो तो पाप लगे! नहीं, महाप्रभुजी कहते हैं, ऐसे को छोड़ने में कोई पाप नहीं है। छोड़ो उसको क्योंकि 'यत: कृष्ण बहिर्मुखा:।' ये कृष्णविरोधी हो चुके हैं।

महाप्रभुजी सावधान करते हैं, शादी करो। शादी करने के बाद घूमो। नैनिताल जाओ, कैलास जाओ। सीधा कथा की छूट नहीं है! मैं बहुत प्रेक्टिकल बातें करता हूं। कई लोग हमारे पास आते हैं, बापू, हमनें शादी की। पहली कथा सुनेंगे। मैं कहता हूं, कथा तो होती रहेगी। पहले घूम आ। एक-दूसरे मिलो। आनंद करो। एन्जोय करो। ठाकुरजी ने कितनी प्यारी पृथ्वी बनाई है! ये झरनें, ये वृक्ष, ये पक्षी बोल रहे हैं! आनंद परमात्मा का स्वरूप है। तथाकथित धर्मों ने चीड-चीड करके बस कहा, वहां न जाओ, ये न करो! हंसने की भी मना कर दी! मुस्कुराने की मना कर दे वो धर्म के लिबास में अधर्म है। हे युवक, वैष्णव, महाप्रभुजी ने सावधान किया है। ये 'सावधान' शब्द बहुत महत्त्व का है। और जब हम साथ में, समूह चिंतन कर रहे हैं, सहचिंतन कर रहे हैं तो इसका अर्थ है दो भाग में-लौकिक दृष्टि से सावधान, अलौकिक दृष्टि से सावधान रहना। छोटी-छोटी बातों से सावधान। मेरे भाई-बहन, मन से सावधान। बुद्धि से सावधान। चित्त से सावधान। अहंकार से सावधान।

तो 'मानस-सावधान', जो केन्द्रीय विचार है इस कथा का उस पर हमारा संवाद चल रहा है। भगवान शंकर कैलास के उपर बैठे हैं। पार्वती सुनने के लिए तत्पर है और शिव ने कहा, आपकी बुद्धि बहुत सुंदर है। भवानी, आप सावधान होकर सुनो। बुद्धि को अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करके मत सुनिएगा। क्योंकि भगवान शिव को पता है, वो गत जन्म में जब दक्षकन्या सती थी तब उसने कथा ठीक से नहीं सुनी थी। बुद्धि का भटकाव था इसी कारण वो एक जनम चुक गई इसलिए सुमति से कथा सुनिएगा। क्योंकि बुद्धि के कई प्रकार है। कथा सुमति से सुने, सावधान होकर सुने मतबल अब ओर एक शब्द लगाउं, सावचेत होकर सुने अथवा तो जाग्रत होकर सुने। सुनने के समय सपने में न खो जाए। सुनते समय न करे निद्रा मानी सो जाने की बात नहीं है, निद्रा का अर्थ है तमस। तमस का अर्थ है तमोगुण, उसमें हम डुबे न रहे। इस बार तो मैं सावधान करता ही रहूंगा क्योंकि विषय ही ऐसा लिया है। बाकी मैंने श्रोताओ को छूट दी है सुनते समय नींद आ जाए तो भी कोई चिंता नहीं! मैंने बहुत पहले से फ्रीडम दे रखा है कि सो जाओ, कोई चिंता नहीं क्योंकि रात को गोली लेकर भी नहीं सो पाते, मैं दिन में सुला दूं तो ये मेरी सफलता है। भवानी से शंकर ने कहा, आप सावधान होकर कथा सुनिए क्योंकि आप सुमति है।

भगवान राम का जन्म क्यों हुआ उसकी एक-दो बातें करके मैं आगे बढ़ जाता हूं। पांच कारण रामजनम के बताए गए हैं। पहला कारण, पूर्व में पहले वैकुंठ के द्वार पर दो द्वारपाल, उसके नाम बताएं है जय और विजय। 'जय' और 'विजय' इन दोनों शब्दों का अर्थ क्या? मेरी जिम्मेवारी से यदि अर्थ करना है तो जय मानी बहिर् जयजयकार। विजय मानी भीतरी जयजयकार। कभी-कभी बहिर् जयजयकार होता है लेकिन भीतरी जयजयकार मिन्स घरवालें-परिवारवालें जयजयकार नहीं करते। अथवा तो अंदर से एक डकार पैदा नहीं होती कि मैंने जो काम किया है, सही किया है। लेकिन मेरे शब्दकोश में मेरे आंतरिक विकास के लिए मैं 'जय' शब्द बहुत पसंद नहीं करता हूं। ये मेरा व्यक्तिगत विचार है। क्योंकि मेरे अंत:करण की प्रवृत्ति मुझे कहती है कि कहीं 'जय' शब्द आता है तो उसके सामने किसी का पराजय हुआ है। ये घटना घट जाती है। किसी का पराजय हो और हमारा विजय हो ये नीति हो सकती है, इन्सान का स्वभाव नहीं होना चाहिए। ये रास भी नहीं आता। इसलिए आप जानते हैं, मैं जयजयकार भी नहीं करवाता। रामचंद्र भगवान की जय नहीं बुलवाता। 'रामचंद्र भगवान प्रिय हो।' ये मेरा व्यक्तिगत निर्णय है। और आप व्यासपीठ के प्रति आदर रखते हैं इसलिए आपने भी वो स्वीकार कर लिया है ये आपका बड़प्पन है। जय-विजय क्या यार छोटी-सी जिंदगी में! हमारे भक्ति संप्रदाय में तो कहा है, 'हारे को हरिनाम।' जो हारता है वही जीतता है। और जीत का जिसको गुरुर होता है वो तो हार ही जाता है! ठीक है, भारत के सनातन सूत्र है, 'धर्म की विजय हो, अधर्म का नाश हो।' 'प्राणियों में सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो।' ये अच्छा है, चलो। अभी इन सब बातों को सौ साल लगेगी दूसरे रूप में प्रस्थापित करने में लेकिन दूसरे के पराजय पर विजय ये व्यक्तिगतरूप में रास नहीं आता है। कथा आप जानते हैं कि सनतकुमार भगवान विष्णु के दर्शन के लिए वैकुंठ गए। वैकुंठ एक लोक है। अब कहां है यह पता नहीं। गूगल में देखो! जिसकी बुद्धि किसी भी प्रकार से कुंठित नहीं हुई ऐसे आदमी के पास बैठना वैकुंठ में निवास है। कोई भी कामना, कोई भी प्रतिष्ठा, कोई भी प्रलोभन, कोई भी भय, उसकी बुद्धि को खंडित न कर पाए। हमारी बुद्धि तो छोटे-बड़े लाभ से कुंठित हो जाती है। आप मुझे सालों से सुनते हैं, विचारों से परिचित है फिर भी दोहराता हूं, भगवान मिल जाए फिर भी मांगना नहीं। यदि मांगने को जी करे तो कहना, तेरी परीक्षा में जो पास हो गया हो और तू जिससे महोब्बत करता हो ऐसे संत-फ़कीर से मुलाकात करवा दे। एक वस्तु याद रखना भाईयों-बहनों, आंखें केवल देखने के लिए नहीं है, सही तो रोने के लिए हैं। ब्रज की गोपियों की स्मृतियां देखो-

निस दिन बरसत नैन हमारे।

बुद्धिमान प्रेम की भाषा क्या जानें? स्वर्ग में अश्रु नहीं है। और भक्तों को तो अश्रु ही सब कुछ है। वैष्णवजन दो वस्तु कभी ना भूले, आश्रय और अश्रु। दृढाश्रय, चाहे हरि में हो चाहे किसी सद्गुरु में हो। मेरी तो ऐसी मान्यता है, यदि आप भगवान के कोई पाठपूजा करते हो और हरि की स्मृति में आंख डबडबा जाए तो समझना, पाठ पूरा हो गया। जबरदस्ती पाठ पूरा करने की जिद्द न करो। मेरा बस चले तो यहां कथा पूरी कर दूं आज क्योंकि आंसू आ जाए वो ही ये कथा का परिणाम है। इससे ज्यादा क्या बोलना, क्या करना? इसीलिए भक्तों ने वृंदावन को पसंद किया। स्वर्ग यह देवताओं का लोक है। वैकुंठ ये विष्णु का लोक है।

वैकुंठ के द्वारपाल नित्य वहां चौकी करते हैं। और सनतकुमार वो चार कुमार है हमारे शास्त्रों में, वे भगवान के दर्शन के लिए वैकुंठ के द्वार पर जाते हैं। कहते हैं, भगवान उस समय शयन कर रहे थे और द्वार बंद थे। महात्माजी आए तो सविनय कहा जय-विजय ने कि महात्माजी, अभी दर्शन नहीं होगा क्योंकि ठाकुरजी शयन में है। महात्माओं ने कहा, दूसरों के लिए ये द्वार सब बंद हो सकता है। हम महात्माओं के लिए नहीं। हम तो कहीं भी, कभी भी जा सकते हैं। आखिर में थोड़ा क्रोध भी आ गया महात्माओं को। द्वारपालों को थोड़ा अहंकार आ गया कि हमारी ड्यूटी है। महात्माओ को क्रोध आ गया। तो अहंकार और क्रोध इतनी ऊंचाई पर भी पीछा कर रहा है! और घटना ये घटी कि द्वारपालों को सनतकुमारों ने कड़ा श्राप दिया कि आप दोनों का पतन होगा, पृथ्वी पर पतन होगा। ये जय-विजय सतयुग में हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु बनकर इस धरती पर आए। वहां भगवान विष्णु से उसने वैर बांधा। हिरण्याक्ष

को प्रभु ने बराह रूप देकर पराजिय किया, निर्वाण दिया। हिरण्यकश्यपु को नरसिंह अवतार लेकर भगवान ने मुक्ति प्रदान की। वो ही दोनों त्रेतायुग में एक रावण हुआ, दूसरा कुंभकर्ण हुआ। और इन दोनों को मारने के लिए भगवान को मनुष्यरूप धारण करना पड़ा। तो एक कारण है हरि को अवतार लेने का जय और विजय। छोटा-सा व्याख्यान दूसरा शिव ने सुमति भवानी को सुनाया, हे देवी, एक बार जलंधर नामक एक राक्षस हुआ। कथा ऐसी है कि जलंधर की पत्नी का सतीत्व जब तक भंग न हो तब तक जलंधर को कोई मार नहीं सकता। जलंधर और देवताओं का युद्ध शुरू होता है और भगवान विष्णु जलंधर की पत्नी के पास जलंधर का रूप लेकर आते हैं। विश्व कल्याण के लिए भगवान श्री हरि ने कपट किया। जलंधर का रूप लिया। कभी-कभी श्रेष्ठ तत्त्व भी छल करता है लोकमंगल के लिए। तुलसी बिलकुल तराजू लेकर बैठे हैं। विष्णु ने छल किया तो किया। उसकी कोई खुशामत नहीं, उसको दंड मिलना चाहिए। बोलता रहा हूं, अब इक्कीसवीं सदी में 'शाप' शब्द ही निकल जाए, अल्लाह करे! ठीक कहा था चित्रभानुजी ने-

मैत्रीभावनुं पवित्र झरणुं मुज हैयामां वह्या करे,
शुभ थाओ आ सकल विश्वनुं एवी भावना नित्य रहे।

'देवी, ये दो जन्म की कथा में तीन वस्तु से सावधान। एक क्रोध से सावधान जो सनतकुमारों ने किया। दूसरा अहंकार से सावधान जो द्वारपालों ने पद का किया कि हम नहीं जाने देंगे। और तीसरा हरि ने छल किया, छल से सावधान। देश की युवानी और हम सब क्रोध, अहंकार और छल कपट से सावधान हो जाए तो जीवन में धन्यता महसूस होगी। यद्यपि वो कथाएं तो हरि के अवतार के लिए हैं। शिव ने भवानी को कुछ मुद्दे पर सावधान किया।

कल पहले दिन की कथा के क्रम में हमने श्री हनुमानजी महाराज की वंदना की। हनुमानजी की वंदना के बाद तुलसीजी ने पूरे पूर्णांक में रामनाम की महिमा और रामनाम की वंदना की। इतना सरल उपाय है हरिनाम का तो तुलसी ने कहा, कडी साधना में क्यों जाना? हम व्यस्त लोग अपने जो-जो कार्यक्षेत्र हो उसमें कहां यज्ञ आदि कर सकेंगे? हरिनाम। मेरे भाई-बहन, मैं ये नहीं कहूंगा कि आप बैठे-बैठे माला फेरते रहे, नाम लेते रहे। आप अपना काम करो, पढ़ो, अपना दायित्व पूरा करो। अपने परिवार और विश्व परिवार को समर्पित करके शुभ करो। लेकिन ये सब करने के बाद रातको जब आपको सोना है। कोई काम शेष नहीं है और आपको नींद नहीं आ रही है। न मूवी देखना है, न सीरियल देखनी है, न फेसबूक। सब देख लिया है। नींद न आती हो तो मैं व्यासपीठ से एक ही बात कहूंगा जो आचार्यों ने कहा, दो-पांच मिनट मिले उसी समय हरिनाम लेना। ये हरिनाम चौबीस घंटे की थकावट उतार देगा। आपको रिचार्ज कर देगा। जहां समय मिले अपनी बेड में या जहां बैठे हो, तुम जिसको मानते हो, अल्लाह को मानो; बुद्ध, महावीर को मानो; माताजी, शिव जिसको जो रास आए, क्या फ़र्क पड़ता है? कृष्ण को, राम को जो नाम आपको रुचिकर लगे। अपने किसी बुद्धपुरुष से लिया हो या आपकी परंपरा से। इतना तो कहूंगा कि चौबीस घंटों में यदि पांच मिनट मिल जाए उसी समय हरि को पुकारना। और मैं वादा करता हूं, उसी समय तुम्हारी आंख के कोने भीग जाए तो हरि ने तुम्हारी पुकार सुन ली।

हमारी तकलीफ़ क्या है कि हम कोशिश करते हैं कि हम सहज बने रहे। हम सहज है। ओलरेडी जनम-जनम से सहज है। हम अनंतकाल से सहज है। 'चेतन सहज अमल सुखरासि।' ये जीवमात्र सहज है। जैसे मैं बोल रहा हूं, मुझे सांस के लिए कुछ करना नहीं पड़ता। मेरी सांस साथ-साथ चल रही है। आप सुन रहे हैं, आपकी सांस सहज चल रही है। सहज हमारा अधिकार है। सहज हमारा स्वरूप है। सहज हमारा आदि-अनादि रूप है। वो सहजता मिट न जाए इसलिए प्लीझ, सावधान! मेरे भाई-बहन, यहां आध्यात्मिक दृष्टि में सावधानी का प्रयोग करूं तो मैं कृष्णमूर्ति को याद करूंगा, अवेरनेस, जागृति। सावधानी मानी आध्यात्मिक अर्थों में जागृति।

इक्कीसवीं सदी में धर्म नहीं, धर्म का सार पकड़ो

'मानस-सावधान', जो इस कथा का मूल सूत्र है, उसके इर्द-गिर्द बहुत-सी जिज्ञासाएं भी है। यथावकाश मैं कोशिश करूंगा। एक बात तो ऐसी पूछी गई है, 'बापू, आप कहते हैं, सावधानता पर सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा हो रही है लेकिन किस बात की सावधानता रखनी चाहिए ये भी स्पष्ट कीजिए। क्योंकि सावधानता तो एक चोर भी चोरी के वक्त रखता है। क्या सावधानता का प्रयोग करके बुरा कर्म किया जा सकता है? इसका समाधान करे।' आपने दृष्टांत जो चोर का दिया है कि किसीको भी लक्ष्यप्राप्ति के लिए सावधानता जरूरी है, परिणाम आपका लक्ष्य क्या है, उस पर निर्भर करता है। चोर यदि सावधान न रहा तो चोरी का लक्ष्य सफल नहीं होता लेकिन यह सावधानी अनुकरणीय नहीं है। यदि इस सावधानी का अनुकरण करना है तो जेल जाने की तैयारी भी रखनी होगी। इसीलिए 'सावधान' शब्द का प्रयोग बार-बार जहां 'मानस' में आया वहां बहुधा 'सुनु' शब्द है। इसलिए सुनने का आग्रह शास्त्रकार ने किया। और सुनने से विवेक होगा और सुनने के बाद किस बात की सावधानी कैसे, कहां रखनी उस बात का निर्णय साधक स्वयं ले पाएगा।

कोई भी बुद्धपुरुष तीन प्रकार से बोलता है। समूह में जब कोई बुद्धपुरुष बोलता है तो सार्वभौम, सार्वलौकिक बोलता है। यद्यपि सुननेवाला यह भी अनुभव कर सकता है कि यह गुफ़्तगू मेरे से ही हो रही है। यह भी अच्छा श्रोतव्य है कि श्रवण करते-करते ऐसी अनुभूति हमें हो। लेकिन सार्वभौम जब बोलना होता है तब कितनी रुचि लेकर लोग कथा में आते हैं उन सबके पास पहुंचना होता है। उसी समय सुनने में विवेक की जरूरत है। बहुत सावधानी की जरूरत है सुनने में भी। इसलिए 'सावधान सुनु', 'सावधान सुनु', 'सावधान सुनु', बार-बार कहा गया है। अधिकतर वैष्णव समाज बैठा है, हम सब वैष्णव हैं। वैसे तो नरसिंह के शब्दों में 'वैष्णवजन तो तेने कहिए जे पीड पराई जाणे रे।' लेकिन सावधानता सुनने में बहुत आवश्यक है कि हमारे लिए क्या मेसेज है? दूसरा, चंद लोग बैठे हो और बुद्धपुरुष बोल रहा है। सबको लगता है ये हमारी जिज्ञासा के लिए बोल रहा है, पर्सनल टोक हो जाती है। बिलकुल व्यक्तिगत तौर पर प्रवाह शुरू हो जाता है। एकान्त में बैठा महापुरुष अपने कमरे में, नदी के तट पर या वृक्ष के नीचे वो न तो सार्वभौम बोलता है, न तो किसी की जिज्ञासा के लिए बोलता है। वो केवल स्वान्तः सुखाय बोलता है। बोले भी, बोले ना भी। आंखें बंद रखे, खोले भी। खड़े-खड़े नाचने का मन करे तो कमरे में नाच ले। सोने की इच्छा हो तो सो जाए। हम निर्णय नहीं कर पाते!

एक वैष्णव का प्रश्न बहुत लंबा है। प्रश्न इतना बड़ा नहीं होना चाहिए। आपने पूछा है, ''हमारे गुरुजन, धर्माचार्य कहते हैं कि अन्याश्रय न करो। शंकर को न भजो। 'हनुमानचालीसा' न करो। हमारे भगवान ने हमारे ग्रंथों में सब कुछ कह दिया है। तो अन्याश्रय और अनन्याश्रय के लिए आप कुछ कहे। हमें समझाया गया है कि कृष्ण ही थड है। फिर हनुमान जैसी शाखाओं को पकड़ने की क्या जरूरत है? 'हनुमानचालीसा' बोलना चाहिए या नहीं?'' बाप, सावधान! आप के घर में आपका पति भी सत्य बोलता है और आपका बेटा भी सत्य बोलता है। और आप पति को ही माने और बेटे को न माने तो आपको किस खाने में रखूं? कृष्ण यदि सत्य है तो राम भी सत्य है। शंकर भी सत्य है। अपना सत्य कुबूल करे और दूसरे के सत्य का अनादर करे तो यह कैसी बात है? अन्याश्रय न करो, जब ऐसा महाप्रभुजी ने कहा है, बहुत सोच समझकर कहा गया है। लेकिन सावधान सुना नहीं गया है! ध्यान देना, जिन-जिन महापुरुषों के शब्दों को अनुयायीओं ने संकीर्ण कर दिया तो ज्यादा फैल नहीं पाए, वो सीमित रह गए! मैं खुद मानता हूं, अन्याश्रय नहीं करना चाहिए।

महाप्रभुजी ने कहा है, वैष्णवों को किन अपराधों से बचना चाहिए? आप तो ज्यादा जाने मेरे से भी। महाप्रभुजी के शब्द है, प्रस्तुति मेरी है। हम कहां महापुरुषों को समझें? तीन दोष को मना किया है महाप्रभुजी ने। पहला दोष, मुखरता दोष। मैं इतना जप करता हूं। इतनी सेवा करता हूं। मैं इतना भोग लगाता हूं। मेरे ठाकुरजी पुष्ट है।

वैष्णव बोले तो केवल 'कृष्ण' ही बोले यानी जरूरी हो सो बोले। हरिनाम, हरिचर्चा अथवा तो कल्याणमयी चर्चा परिवार के, समाज के शुभ की चर्चा करे, अन्यथा न बोले। कृष्णदास महाप्रभुजी एक बहुत निजी आश्रित है। कृष्णदास जब तक महाप्रभुजी के पास सेवा में बैठते थे, कृष्णनाम का जप नहीं करते थे। केवल बैठे रहते थे। महाप्रभुजी ने एक दिन कहा, 'कृष्णदास, आप 'श्रीकृष्णः शरणं मम।' क्यों नहीं बोलते? हरिनाम लेते रहो।' मुझे जवाब बहुत प्यारा लगा। अपने स्वभाव के अनुकूल लगा। 'दाता, तेरे पास बैठने के बाद मुझे जप करने की जरूरत क्या है?' महाप्रभुजी मुस्कुराए। उनको लगा कि कृष्णदास पका जा रहा है। पूर्ण आश्रित को बुद्धपुरुष के पास बैठने पर कुछ करने की जरूरत नहीं है। लेकिन खास ध्यान रखना, मुखरता दोष लागू न हो जाए। महाप्रभुजी ने बहुत समझाया कि मेरे पास बैठो तो भी 'कृष्ण-कृष्ण' जपो। कहे, नहीं दाता, जरूरत क्या है? तेरे पास तेरी खुश्बू में बैठता हूं तो लगता है मुझे सब कुछ हो रहा है। हमने अघरी-अघरी बातें ही की फिर हमनें सरल बातों को तुच्छ मान ली! इसीलिए सूफ़ी लोग कहते हैं, सहज रहो, भूख लगे तो खा लो। झेन कहते हैं, भूख लगे तो खा लो, तृषा लगे तो पी लो, नींद आए तो सो जाओ। कितने बंधन की जंजीरें डाल दी! और पाया कुछ नहीं!

या तो कुबूल कर मेरी कमज़ोरियों के साथ,
या छोड़ दे मुझे मेरी तन्हाइयों के साथ।
लाज़िम नहीं कि हर कोई हो कामयाब ही,
जीना भी सीख लीजिए नाकामियों के साथ।

- दीक्षित दनकौरी

महाप्रभुजी ने अच्छा तर्क किया कि जब तक मैं हूं तो कोई जरूरत नहीं, जब न रहूं तब तो कृष्णनाम की जरूरत पड़ेगी। आप अकेले हो जाओगे। मैं न होऊं तब कृष्णदास, तुझे कोई भय सताएगा तो कृष्णनाम तुझे भय से मुक्त करेगा। एक दिन ऐसी घटना घटती है। कृष्णदास कहीं जंगल में घुम रहे हैं और एक खुंखार वाघ आया दौड़ता हुआ। कृष्णदास वृक्ष पर चढ़ जाते हैं। छोटा-सा जलाशय था। वृक्ष के पास वाघ पानी पीने के लिए गया और वो डाली पर बैठकर कृष्णनाम जपने लगे। वाघ पानी पीए और डाली पर देखे। देखे और कृष्णदास को भय लगे और कृष्णदास 'श्रीकृष्णः शरणं मम' बोलने लगा। भय लगे और हरिनाम शुरू हो जाता था। पानी पीने के बाद वाघ चला गया। कथा कहती है, कृष्णदासजी महाप्रभुजी के पास आए। दंडवत् किया, भगवान, आज ऐसा हुआ। एक वाघ खुंखार था। मुझे भय लगा। मैं वृक्ष पर चढ़ गया। उसने मेरे सामने देखा। मुझे डर लगने लगा। मैं हरिनाम लेने लगा। उसने फिर पानी पिया। फिर मेरे सामने देखा। मैं हरिनाम लेने लगा। तब महाप्रभुजी ने कहा, ये वाघ नहीं था, गत जन्म का एक वैष्णव था। हम तो जनम-जनम की यात्रा में माननेवाले लोग हैं ना! पुनर्जन्म में मानते हैं, पूर्वजन्म में मानते हैं। कई पंथ ऐसे हैं जो नहीं मानते। नहीं मानते वो उनकी मौज! मैं तो बिलकुल चुस्त मानता हूं कि यहां पुनर्जन्म की व्यवस्था है। और ये हमारा और आपका मिलना केवल नदी-नाव संजोग नहीं है। कभी पहले भी मिले होंगे। हो सकता है, बाद में भी मिल सकते हैं। वर्ना क्यों तुलसी लिखे, 'मानस' को गाओ। बाप! 'मानस' प्रीति-शास्त्र है, मुक्ति तो पीछे दौड़ेगी। या फिर कहो, मस्ती का शास्त्र है।

मुझे तो आता नहीं, खाली मौज करते हैं! लेकिन शास्त्रीय रागों की अपनी एक महिमा है बाप! शास्त्रीय ताल की अपनी एक महिमा है। कोई भी म्युज़िक म्युज़िक है। कोई चिंता नहीं लेकिन मूल तो हमारा जो शास्त्रीय संगीत है। सात सूरों का जो सागर है-

धिन धिन तिन्ना धात्रक धात्रक...
धिन धिन तिन्ना धात्रक धात्रक...

मेरी एक स्मृति इसके पीछे काम रही है। मैं अभी कहना नहीं चाहता लेकिन साठ साल पहले की एक स्मृति यह रुद्रताल के पीछे जुड़ी हुई है। यह बत्रीस मात्रा का ताल है, जिसको रुद्रताल कहते हैं। और रुद्रताल ऐसे भी मुझको प्रिय लगेगा क्योंकि 'रुद्राष्टक' है। एक पंक्ति गा लें 'रुद्राष्टक' की। वैष्णवों, 'रुद्राष्टक' गाने में अन्याश्रय नहीं होगा। यार मैंने कभी 'यमुनाष्टक' गाने को मना किया? मुझे तो 'यमुनाष्टक' पर बोलता है साहब! ठाकुर वल्लभाचार्य जब मुझे प्रेरणा दे तब। अद्‌भुत 'यमुनाष्टक' है! कृष्ण उपासकों के लिए उतना ही 'यमुनाष्टक' का महत्त्व है। वैष्णव बच्चा 'यमुनाष्टक' गाये बिना नहीं रह सकेगा, गाएगा-

नमामि यमुनामहं सकल सिद्धिहेतुं मुदा।
मुरारिपदपंकजस्फुरदमन्दरेणूत्कटाम्।।

●

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं।

विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं।।

●

उगमणा ओरडावाळी भजुं तने भेळियावाळी

सोनलमाँ आभकपाळी भजुं तने भेळियावाळी।

श्रद्धांजलि दे दूं, सोनल बीज है आज। आई माँ, मढडा, समग्र चारण समाज; चारण समाज क्या, सब समाज। शक्ति के बिना समाज चल नहीं सकता।

तो बाप! मुखरता दोष है। मैं आपके प्रश्न के उत्तर का विस्तार कर रहा हूं इसका मतलब यह नहीं कि मैं आपके अन्याश्रय सिद्धांत का खंडन कर रहा हूं। मुझे कोई अधिकार नहीं किसी सिद्धांत को खंडन करने का। क्योंकि तत्त्वत: मैं सिद्धांतवादी हूं हीं नहीं। मैं स्वीकारवादी हूं। महापुरुष कर सकते हैं सिद्धांत की चर्चा। मैं यह कहने जा रहा हूं कि बाप में सत् है, बेटे में सत् है, बेटी में सत् है तो क्या आप एक सत्य को कुबूल करे और दूसरे के सत्य को कुबूल ना करे? तो दूसरे के सत्य को कुबूल करना अन्याश्रय हो गया? महापुरुषों के वचनामृतों को हमने संकीर्ण कर दिया! सावधानी से सुनो। मेरे कहने का मतलब वैष्णव अन्याश्रय न करे , बिलकुल न करे लेकिन भेदबुद्धि से मुक्त हो जाओ। मैं आपको 'हनुमानचालीसा' सिखाने नहीं आया हूं कि आप ये छोड़ दो। मैं आपको रामभक्ति पकड़वाने नहीं आया हूं।

कृष्ण को पकड़े रखो। महाप्रभुजी को पकड़े रखो। यमुनाजी को पकड़े रखो लेकिन मन में भेद निकाल दो कि राम गलत हैं, हनुमान गलत हैं। हमारे यहां एक लड़का ईश्वर अभी नया-नया हमारी कथा में आया है। उसका संप्रदाय भिन्न है। उसके घर में उसके संप्रदाय के साधु गए तो उसने हनुमानजी के या जिसको मानता होगा उसके फ़ोटो देखें तो साधु ने कहा, ये फ़ोटो ये सब तू क्या कर रहा है? मूल पकड़। ईश्वर ने कहा,बहुत समय के बाद मैंने मूल ही पकड़ा है। मैं क्या थोड़ा धर्मांतर कराने आया हूं कि आप कृष्ण को छोड़ दो! लेकिन मुखरता दोष। दूसरा अन्याश्रय दोष। और तुलसी ने अन्याश्रय न करना यह सूत्र कुबूल किया है।

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा।

कायँ बचन मन पति पद प्रेमा।।

सूत्र वही महाप्रभुजी का चर्चा, 'मानस' कर रहा है। यह समन्वय देखो! तुलसी ने स्वयं कहा, एक ही धर्म, एक ही व्रत, एक ही नियम, बस। 'भरोसो दृढ इन चरनन केरो।' भेदवृत्ति छोड़ो कि ये डालियों पर घुम रहे हैं! माफ़ करना, थड पर फल नहीं होते। फल तो डालियों पर ही होते हैं। डालियों पर जाते हैं, डालियों को, फूल को छूते हैं, खुश्बू लेते हैं, फल खाते हैं इसीलिए डालियों पर भी बहुत साम्राज्य, समृद्धि है। मेरा 'मानस' क्या कह रहा है?

सो अनन्य जाके असी मति न टरहि हनुमंत।

अनन्यता की बात 'मानस' ने भी कही है। तीसरा दोष अनिवेदिता दोष। कोई भी चीज ठाकुरजी को अर्पण किए बिना ग्रहण न करना। वैष्णव नया कपड़ा पहनेगा तो पहले ठाकुरजी को अर्पण करेगा। तुलसी ने यह कुबूल किया है-

तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं।

प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।।

नया वस्त्र, नया गहना, ठाकुरजी का प्रसाद पहले मेरे ठाकुरजी को भोग लगाउं। रूबरू न लगाओ तो मानसिक। वल्लभ ने मानसी पूजा को कितनी महिमा दी है! मानसी सेवा, तनुजा सेवा, वित्तजा सेवा। यह सब आपने पूछा है इसीलिए मैं समय ले रहा हूं कि हमको ऐसा समझाया जा रहा है, मूल को पकड़ो। तो शांति से कहना चाहिए एक तगड़ा लिफ़ाफ़ा रखकर। अच्छा अमाउन्ट कवर में डालकर रखना चाहिए, प्रणाम करना चाहिए कि हमने मूल को ही पकड़ा है। हमनें महाप्रभुजी के वचन को पकड़ा है। मूल यह है। हमनें शाखाओं को, गलत अर्थों को नहीं पकड़ा है। महाप्रभुजी का सिद्धांत है नि:साधनता। और तुलसी नि:साधनता पर कितना बोले हैं! समन्वय तो करो। केवल भरोसा। प्लीज़, अन्याश्रय मत करना। जहां आप हैं वहां ठीक है लेकिन दूसरा ठीक नहीं है, ऐसी भेदवृत्ति न रखो। ठाकुरजी विशेष प्रसन्न होंगे। जो ऐसा समझाए उसके साथ विवाद भी मत करना। प्रणाम करके निकल जाना। विवाद से कुछ नहीं होता। लेकिन मैं इतना जरूर कहूंगा, जो बुद्धपुरुष अवतार के रूप में हमारे लिए हमारे बीच आए उनके वचनों को हमनें संकीर्ण बहुत कर दिया। इसीलिए हम विकसित नहीं हो पाते।

एक और बात, 'गोपीगीत श्री ठाकोरजी समक्ष गावुं जोईए?' ऐसा प्रश्न क्यों? मुझे पूछा है तो मैं तो कहूंगा, गा सकते हैं ठाकोरजी के सामने। कोई आचार्य

परंपरा टूटती हो तो मत गाईएगा। आपकी आप जाने लेकिन मैं तो हनुमान के सामने गाता हूं। मेरे पास कोई भेद की जगह नहीं। करूं भी क्या? जगह हो तो भेद रखूं ना?

जाहिद शराब पीने दे मस्जिद में बैठकर।

वर्ना ऐसी जगह बता जहां खुदा न हो।

ऐसी स्थिति में भेद कहां रहता है? मुझे पूछा है, मैंने बताया फिर भी आचार्यों की आज्ञा लेना। एक वस्तु मेरे वैष्णव भाई-बहन सभी श्रोता भाई-बहन सुन ले, साधन भक्ति में दिशा होती है कि जप करना है तो किस दिशा में बैठकर करे? यज्ञ, साधन है उसमें दिशा होती है लेकिन नि:साधन भक्ति में दिशा नहीं, साधक की दशा होती है। यहां तो दशा की बात है। साधनवालों को दिशा चाहिए। हम जैसे नि:साधन तत्त्वों को तो दशा होती है, दिशा नहीं। महाप्रभुजी पहली दशा का नाम देते हैं अभिलाषा। मनोरथ पूरा हो, ठाकोर की इच्छा। न हो, उसकी इच्छा। भरोसो, अभिलाषा, मनोरथ शब्द के साथ 'मानस' ने संगति की है। 'मनोरथ' शब्द उठाया है। 'अभिलाषा' शब्द उठाया है।

उर अभिलाष निरंतर होई।

देखिअ नयन परम प्रभु सोई।।

मनु और शतरूपा अभिलाषा करते हैं निरंतर कि इन्हीं आंखों से हमें भगवान के दर्शन हो। महाराज विश्वामित्रजी मनोरथ करते हैं। यह दशा है। कभी मैं बोला हूं इस पर। जैसे यह दस दिशा है ना वैसे श्रीमन् महाप्रभुजी हमको दस दशा का संकेत करते हैं। अभिलाषा दस है कि हमें श्री वृंदावन जाना है। हमें दंडवती करनी है, हमें बैठकजी के दर्शन करने हैं। हो, पूरा न हो अल्लाह जाने! साधनवाले कुछ कर सकते हैं, नि:साधनवाले मनोरथ ही करेंगे। बहुत साधन कर लिए विश्वामित्रजी ने लेकिन भयभीत है। मारीच-सुबाहु विघ्न करते हैं, यह सब साधन छोड़कर नि:साधनता के मार्ग पर गए विश्वामित्र अयोध्या और मनोरथ करते-करते कब रास्ता छोटा हो गया पता नहीं चला! दूसरी दशा का नाम महाप्रभुजी ने कहा चिंता। यद्यपि महाप्रभुजी कहते हैं, चिंता नहीं करनी चाहिए। तीसरा पडाव है स्मरण। आप सुन ही रहे हो तो ये भी सुनो, जप साधन है। स्मरण साधन नहीं है, अवस्था है। एक दशा का नाम है गुणकथन। कहीं चैन न पड़े। कहीं जीव न लगे तो गोविंद के गुणगान गाए। एक दशा का नाम आप कहते हैं उद्वेग। उद्वेग एक खराब चोघडिया है। अल्लाह करे, किसी के जीवन में न आए। लेकिन भक्ति मार्ग में उद्वेग मानी अजंपो। हरि की प्यास बढती जाए, कहीं चैन न मिले। भक्तिमार्ग का उद्वेग स्वीकार्य है। सांसारिक उद्वेग न को! एक दशा है निरंतर देखते रहना। 'चितवत रहहु पंच दिन राती।' महाप्रभुजी से 'मानस' का कितना मेल है, सोचिए। जो प्रेममार्गी है उन सब का अनुभव है करीब-करीब। आगे की दशा का नाम है व्याधि। आदमी को एक पीड़ा लागू हो जाए, एक रोग लागू हो जाए। महाप्रभुजी की दशा का एक पड़ाव है, साधक को व्याधि लागू हो जाए।

एहि कुरोग कर औषधु नाहीं।

साधेउँ सकल बिस्व मन माहीं।।

भरत कहते हैं, मुझे जो एक रोग लागू हुआ है, 'मानस' में उसकी औषधि नहीं है। बहुत से पड़ाव है। आखिरी पड़ाव बताया गया है यह मुझे बहुत अच्छा लगता है, वो है असह्य प्रेम। सहा न जाए। उसको व्याख्यायित करना मुश्किल है। असह्य लगे सब कुछ। जो जाने वो जाने। एक-एक दशा का मुकाम आएगा, अभिलाषा करो। फिर जो-जो पड़ाव से गुजरना पड़े गुजरे। एक शे'र है-

कुछ तुम्हारे लिए आंखों में छुपा रखा है।

देख लो अगर न देखो शिकायत भी नहीं है।

श्रीमद् वल्लभ ने हमारे लिए उनकी आंखों में कुछ छुपा रखा है जरूर। लेकिन हम देख न पाए उनके सूत्रों का संकीर्ण अर्थ करे तो!

मैं कहता हूं, राधा असह्य प्रेम का नाम है। हुई हो, न हुई हो, कृष्ण पर छोड दो। लोग कहते हैं, ये गोपीजन क्यों मथुरा नहीं गए? बहुत अंधेरा जिसको पसंद होता है उसे पंद्रह साल अंधेरे में रखो बाद में उजाले में लाओ तो फिर अंधेरे में चले जाते हैं। जिसको विरह रास आ जाता है उसको मिलन अच्छा नहीं लगता। क्योंकि मिलन के बाद फिर वो ही शाम,वो ही गम, वो ही तन्हाई! राधा प्रत्येक घर में हो सकती है। हर घर बरसाना बन सकता है। हर आंखें बरसाना बन सकती है। मेरे भाई-बहन, जिसको भजन करना है, जागृत रहना है, सावधान रहना है, वो इधर-उधर राव नहीं करते, रोते रहते हैं। मेरी व्यासपीठ का सूत्र है, राव न करो, रोया करो। कैलास पंडित की एक ग़ज़ल-

दर्दने गाया विना रोया करो।

प्रेममां जे थाय ते जोया करो।

एक राधा है 'रामचरित मानस' में श्री भरतजी। राधा होने में पुरुष शरीर या स्त्री शरीर फ़रजियात नहीं है। 'न मैं जाति भेद:।' नर जाति और नारी जाति का भेद उसमें नहीं रहता। असह्य प्रेम भोगा है मेरे भरत ने। मुझे मौका मिला तो यह दशों दशा मेरे भरत में कैसे सिद्ध होती है वो कहूंगा। 'देह दिनाई दिन दुबर होई।' एक-एक दशा से गुजरे हैं मेरे भरतजी। तुलसीदासजी ने भरत को समुद्र कहा, 'भरत पयोधी गंभीर।' और समुद्र मंथन से जैसे चौदह रत्न निकले वैसे 'रामचरित मानस' में भरत का मंथन किया गया विरहरूपी मंदराचल पर्वत डालकर और चौदह रत्न निकले। आखिर में निकला प्रेम-अमृत। पहले विष भी निकला। ऐरावत भी निकला। कल्पतरु भी निकला। धन्वंतरि भी निकले। वारुणी निकली। लक्ष्मी निकली। लेकिन भरत में चौदह रत्न नहीं है। भरत समुद्र नहीं है। कहा तो गया समुद्र है। ये तो निरवधि है। तुलसी कहे, समुद्र की भी सीमा है। भरत ऐसा है जिसकी कोई सीमा नहीं। यह है असह्य प्रेम का जीवंत उदाहरण। प्रेममूर्ति भरत। परमारथ ने अवतार लिया उसका नाम राम है और प्रेम ने अवतार लिया उसका नाम भरत है। महाराज दशरथ की मृत्यु के बाद भरतजी ननीहाल से आए। पितृक्रिया हुई। राम बन में है, पिता स्वर्ग में है। एक सभा मिली और सभा में वशिष्ठजी ने सुदंर प्रवचन किया। वशिष्ठ धर्माचार्य है। वशिष्ठजी भी मेरे निजी मत में, निजी विचार में भरतजी को बहुत देर से समझ पाए। कभी-कभी धर्माचार्य लोग प्रेमपंथी को नहीं समझ पाते कि असह्य प्रेम की अवस्था क्या होती है? वशिष्ठजी समझा रहे हैं भरत को, भरत सुनो, वचन निभाना धर्म है। पिता ने वचन निभाया। राम पिता की आज्ञा मानकर वन में चले गए। धर्म का निर्वहण किया। पिता के वचन को प्रमाणित करो।

असह्य प्रेम की अवस्था में डूबा भरत रो पड़ा। पूरी सभा भरी है। भरत समझते हैं कि आप धर्म की औषधि मुझे दिए जा रहे हो लेकिन मुझे जो दर्द है उसकी औषधि ये नहीं है। मैं युवान भाई-बहनों को कहना चाहता हूं, इक्कीसवीं सदी में धर्म का सार पकड़ो, धर्म नहीं। फिर कहूं, धर्म नहीं, धर्म का सार। फिर कहूं, धर्म नहीं, धर्म का सार। ये 'मानस' ने कहा है-

समुझब कहब करब तुम्ह जोई।

धरम सारु जग होइहि सोई।।

प्रेम-अवस्था को समझने के लिए बड़े-बड़े धर्माचार्यों को बहुत यात्रा करनी पड़ती है। ये 'मानस' का दर्शन है। सुनिए, हमनें क्या किया, धर्म को केवल शब्दों में डाल दिया! यद्यपि शब्द जरूरी है। लेकिन केवल शब्दों में धर्म नहीं आ जाता, सावधान! मेरा घाट इस बात पर अड़ा हुआ है कि इक्कीसवीं सदी की युवानी में धर्म की जगह धर्मसार समझा जाए। बहुत समय के बाद भरतचरित्र को स्पर्श कर रहा हूं। बहुत कठिन चरित्र है। प्रेम व्याख्यायित नहीं हो पाता लेकिन करने का यह दुस्साहस है! मैं भूल गया, महाप्रभुजी ने जो दस दशा का वर्णन किया है उसमें एक दशा का नाम है जड़ता। इस मारग का पथिक जड़ हो जाता है। चर होते हुए अचर हो जाता है। प्रेम की ताकत होती है जड़ को चेतन करना, चेतना को जड़ बना देना।

भरत-चरित्र अंत:करण का स्नान है। भरतचरित्र हमारे बंद पडे संगदिल को गोमुख बनाता है। भरत चरित्र है एक पुकार। भरत-चरित्र संगदिल को प्रगटानेवाली गंगोत्री है। भरतचरित्र भवबंधन से मुक्त करनेवाले प्रेम की गाथा है। इसीलिए 'सावधान सुनु।' सावधान होकर सुनना पड़ेगा। और वो संबोधन है जनक का अपनी पत्नी के लिए। क्या मतलब? जनक जैसा आदमी जो देह में रहते हुए विदेह की कक्षा प्राप्त कर गए हैं वो क्या देह के उपरी भाग का वर्णन करेगा? और वो भी चित्रकूट में! इधर दशरथजी का स्वर्गवास। दु:खी-दु:खी है! राम का वनवास। अपनी बेटी वन में एक तपस्विनी का जीवन जी रही है और जनक अपनी पत्नी से रात्रि के समय बात करते हुए कहते हैं। सुमुखी, सुलोचनी, ये केवल दैहिक संबोधन नहीं है। क्योंकि बोलनेवाला विदेह है वो केवल शारीरिक अंगों की चर्चा नहीं कर पाता लेकिन दो संबोधन बहुत महत्त्व के हैं। सावधान होकर सुनिएगा। अध्यात्मजगत में चेहरे का शेप कैसा है, उसको ही सुंदर नहीं माना गया। उसकी सुंदरता है, उसकी भी एक जगह है, अवश्य। सुंदरता की निंदा नहीं होनी चाहिए लेकिन सुंदरता का शिकार भी नहीं होना चाहिए। सुंदरता की आरती उतरनी चाहिए। सुंदरता को गाली देनेवाले अंदर से बहुत बीमार है, अस्वस्थ लोग है! नहीं, सुंदरता पाप नहीं है। तुमने नहीं दी सुंदरता! एक बहुत बड़ा परमात्मा है उसने दी है। लेकिन विदेहराज जिस सौंदर्य की चर्चा करते हैं वो सुमुख केवल बहिर् शेप नहीं है। सुंदर मुखवाली अध्यात्मजगत में वो ही है जिसके मुख से किसी की निंदा हुई न हो। वो

सुमुख है जिसके मुख से कभी असत्य भाषण न हुआ हो। वो सुमुख है जिसके मुख ने कभी अखाद्य खाया न हो। वो सुमुख है जिसमें पता न चले ऐसे निरंतर हरि का नाम चलता हो। 'वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायाम्।' ये सुमुख है। जिसके चेहरे को देखकर पाप मिट जाय वो सुमुख है। सुनयना ऐसी है इसीलिए सुमुखी कहा। सुलोचनी; केवल आंख के शेप का वर्णन नहीं। यद्यपि आंख के शेप की महिमा है अवश्य। लेकिन यहां सुलोचनी का मतलब है सुदर्शन; अच्छा दृष्टिकोण, अच्छी विचारधारा, अच्छी सोच। सुनयना में दोनों है। वो सुमुखी भी है, सुलोचनी भी है। फिर भी जनक ने कहा, असह्य प्रेमवाले भरत का चरित्र सुनने से पहले मैं आपको सावधान करता हूं क्योंकि मैं ऐसे चरित्र को छूने जा रहा हूं जो भवबंधन को विमोचित करनेवाला है।

मुझे कुछ प्रश्न और भी पूछे गए हैं। 'आपणी नियति कोण बनावे, आपणे बनावीए के लखाई ने आवे?' नियति नियति है लेकिन हमको भी थोड़ी स्वतंत्रता दी गई है। जो परमात्मा ने निश्चित किया है वो नियति है।

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई।

करै अन्यथा अस नहिं कोई।।

जो नियति निश्चित करती है वो हो कर रहता है लेकिन हम जीव को इतना बांधा नहीं गया। थोड़ी स्वतंत्रता भी दी गई है। जैसे एक गाय को आंगन में बांधो। नियति ने हम सब को बांधा है, हमारे प्रारब्ध ने हमारे संचित कर्म ने जो नाम जो नाम दो लेकिन जिसको दृढ आश्रय हो उसको नियति कुछ नहीं कर सकती। हमको सब देव देता है, नियति देती है। आश्रितों को देव नहीं, गुरुदेव देता है। जो आश्रित है उसके देव बीच में आता ही नहीं, आ ही नहीं सकता। बाकी नियति निश्चित है एक स्वतंत्रता दिए। गाय को खूंटी से बांधो लेकिन गाय कि रस्सी जितनी लंबी होगी उतनी गाय को स्वतंत्रता दी गई है कि इर्द-गिर्द घुम सके। बंधी तो है लेकिन जितनी रस्सी लंबी उतना स्वातंत्र्य भी है। हम सब नियति के हाथों बंधे हैं लेकिन परमात्मा ने इतनी स्वतंत्रता दी है कि तू तेरा नसीब खुद निर्माण कर। नियति अटल है लेकिन स्वातंत्र्य भी है।

'लग्न पछी केम वहुने धर्म बदलवो पडे, केम वरने एनो धर्म बदलवो न पडे?' हवे तो मने साव ऊंधुं ज लागे छे! परण्या पछी ओलोये धर्म बदली नाखे छे! मैं तो यह विनोद कर रहा हूं बाकी धर्म की सबको स्वतंत्रता होनी चाहिए। गतानुगति धर्म में न हो। धर्म यदि स्वातंत्र्य न दे तो अधर्म मार देगा। हां, संघर्ष नहीं होना चाहिए, लड़ाई नहीं होनी चाहिए। पत्नी को पति का ही धर्म कुबूल करना चाहिए ऐसी एक परंपरा-सी हो गई लेकिन उसमें परिवर्तन हो सकता है, करना चाहिए। और इस में किसी को आड नहीं बनना चाहिए। यह तो हमारा शील है, समर्पण ऐसा है कि एक स्त्री पति के घर जाती है तो तेरा जो है वही मेरा, यह उनका समर्पण और त्याग है। ये शील को बदला भी नहीं जा सकता। इस मर्यादा की एक महिमा भी है लेकिन दबाव नहीं होना चाहिए। फ्रीडम का नाम धर्म है। बंधन का नाम छोटे-बडे पंथ है। अब मेरी जो परंपरा है प्रवाही उसमें तो कृष्ण उपासना है। हम निम्बार्की लोग है लेकिन गाता हूं राम को, रोता हूं शंकर के लिए। मेरी स्वतंत्रता है। और सब से अधिक मैं गुरु को आदर देता हूं। यह मेरी स्वतंत्रता है। मैं परंपरा से बंधित नहीं हूं और न कोई होना चाहिए। जैसे डोमेस्टिक वोल्स होती है वैसी रीजियोनल वोल्स भी गिरनी चाहिए। छोटे-छोटे बंधनों, संकीर्ण दीवारों ने हमको बांट दिया है!

'भस्म आरती बहेनो ने करवानी परवानगी केम नथी?' कौन करते हैं मना? साउथ में जाओ। हर एक बहन-बेटी भस्म लगाती है। बहनों को आरती करने की छूट होनी चाहिए। और कहीं कड़े नियम हो तो हम जिद्द भी क्यों करे? बहन लोग आरती कर सकती है, यज्ञ कर सकती है। बहन लोग वेद-उच्चारण कर सकती है। इक्कीसवीं सदी में संशोधन करके यह स्वातंत्र्य देना पड़ेगा।

इक्कीसवीं सदी में धर्म का सार पकड़ो, धर्म नहीं। प्रेम-अवस्था को समझने के लिए बड़े-बड़े धर्माचार्यों को बहुत यात्रा करनी पड़ती है। तब कभी ऐसी अवस्थावालें महापुरुष को समझा जा सकता है। ये 'मानस' का दर्शन है। सुनिए, हमनें क्या किया, धर्म को केवल शब्दों में डाल दिया! यद्यपि शब्द जरूरी है। लेकिन केवल शब्दों में धर्म नहीं आ जाता, सावधान! मेरा घाट इस बात पर अड़ा हुआ है कि इक्कीसवीं सदी की युवानी में धर्म की जगह धर्मसार समझा जाए।

सावधानी संन्यास है, असावधानी संसार है

जिस विचार को लेकर हम आपस में वार्तालाप कर रहे हैं वो है 'मानस-सावधान।' मैंने दूसरे दिन कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को सावधान रहना चाहिए। मन से, बुद्धि से सावधान रहना चाहिए, चित्त से सावधान रहना चाहिए और अहंकार से सावधान रहना चाहिए। मुझे लगता है, यह अंत:करण चतुष्टय से जो साधक सावधान हो जाता है उसको अंत:करण की प्रवृत्ति की आवाज़ सुनाई देती है। और जब अंत:करण की प्रवृत्ति की आवाज़ सुनाई देती है तो यह जीवन के निर्णय के लिए सबसे बड़ा प्रमाण माना जाता है। हमारे यहां वेदों को प्रमाण माना जाता है कि वेदों ने यह कहा सो करो। अनुमान प्रमाण, यहां धुआं है तो अग्नि हो सकती है। कहीं प्रत्यक्ष प्रमाण कि ये देखो, यह साबिती है कि पानी है। लेकिन कभी-कभी प्रत्यक्ष प्रमाण भी गलत होते हैं। जैसे कि धूप के महिनों में खेतों में घूमने जाओ, कहीं दूर दिखता है पानी। लगता है, लहलहाता समंदर है पानी का। आप यह भी जानते हैं कि तृषातुर हिरन तो इस जल को पीने के लिए माइलों दौड़ते हैं। थक जाते हैं। कभी-कभी मर भी जाते हैं! मृगजल का प्रत्यक्ष प्रमाण झूठा है, मिलता कुछ नहीं! तुलसी कहते हैं, समुद्र के तट पर सीप है। सीप में समंदर का जल भरा है और सूरज की किरनें कुछ इसी तरह गिरती है तो सीप में रहा जल चांदी का टुकड़ा लगता है दूर से। ऐसा वक्तव्य है तुलसी का कि दिखता है चांदी लेकिन यह प्रत्यक्ष प्रमाण झूठा है। चांदी नहीं है। यह जल सीप और सूरज के संगम से बना एक आभास है। वेद का प्रमाण तो सही माना गया है लेकिन फिर भी कभी-कभी शास्त्र की अपनी जगह है। एक महात्मा ने कह दिया, 'नहीं मिलती सब बात बेदन में। बेद कई सो भेद ही है।' नरसिंह मेहता ने कह दिया, 'ग्रंथ गरबड करी।' अब शास्त्र प्रमाण, वेदप्रमाण भी हमारे लिए कोई सुलभ नहीं। हमें वेद आता नहीं और वो कुछ इधर का उधर बता दे तो! अनुमान प्रमाण। न्याय है यह कि धुआं निकलता है तो वहां अग्नि होना चाहिए। यह भी झूठा है। शर्दी के दिनों में आपके मुख में से भी धुआं निकलता है लेकिन वहां अग्नि नहीं है। ऐसे समय में बुद्धपुरुषों ने एक निर्णय दिया, तुम्हारे अंत:करण में क्या चल रहा है? अंत:करण की प्रवृत्ति ही तेरा प्रमाण है।

अंत:करण में चार चीज़ें है-मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। एक आदमी को चार रस्सी बांध दो। एक आदमी उसको पूरब में खींचे, एक पश्चिम में, एक उत्तर में, एक दक्षिण में, तो इस आदमी की क्या दशा हो? उसके जीवन की तो कोई आशा ही नहीं! यह तो मरने की ही प्रवृत्ति हो गई! हमारे जैसे संसारीओं की कुछ-कुछ दशा ऐसी है कि चार चीज रस्सी की तरह हमको खींचती है। इसीमें सावधानी कैसे बर्ते? मन कहता है, उधर जाए। बुद्धि कहती है, छोड़ यार, यह कर! चित्त तो कम्प्यूटर है, जनम-जनम का प्रोग्राम उसमें डाला गया है। वो कुछ ओर कहता है और अहंकार का तो कुछ गणित ही नहीं! और चार रस्सियों से बंधा आदमी कैसे निर्णय कर पाएगा? तब जाकर संतों, महापुरुषों ने माना है कि इन चारों से जो सावधान हो जाए तो उसको सही प्रमाण प्राप्त होने लगता है। सभी दर्शन प्राप्त होने लगता है। तो यह 'सावधान' शब्द आध्यात्मिक भी है। व्यावहारिक अर्थ में भी है। फिर एक बार कह दूं, सावधानी का अर्थ आप जागृति ही लेना। जागते रहो, जागते रहो,जागते रहो। हर एक प्रक्रिया में, कार्य में सावधानी बनी रहे।

प्रश्न है कि 'बापू, हम भगवान की प्रार्थना करे, पूजा करे, पाठ करे तो उसमें सावधान रहकर करे कि कैसे करे?' सामान्य सावधानी तो रखनी पड़ेगी वर्ना ठाकुरजी रह जाएगा और आचमनी को स्नान करा दोगे! सीधी-सादी जागृति का सवाल है। कहां अर्चना करनी, फूल कहां चढ़ाना, कैसे चढ़ाना, कौन फूल किसको चढ़ाना, संध्या करने में कितनी आचमनी जल लेना, कहां मार्जन करना, कौन वेद की संध्या है, यह सब साधन में सावधानी जरूरी है। 'मानस' में भगवान की स्तुति, पूजा-पाठ आदि करना हो उसमें किस प्रकार की सावधानी रखी जाए उसका एक सूत्र दिया है-

सुनि बिरंची मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मतिधीर।।

इतना ध्यान रखना, जब देवताओं ने भगवान की स्तुति की तब सबसे पहली स्तुति यह आई कि मन को सावधान कर दिया। मन हर्षित हुआ। इसका मतलब पहली जागृति यह होनी चाहिए कि हमारा मन प्रसन्न होना चाहिए। मैं तो यहां तक छूट दूं कि सुबह छ: बजे आप ठाकुरजी की पूजा करते हो और छ: बजे तुम्हारा मन प्रसन्न न हो तो आठ बजे करो। अब मैं समझता हूं कि आप कहे, छ: बजे ही करनी है पूजा क्योंकि आठ बजे ओफ़िस जाना है। प्रसन्नता हो तो गाडी में पूजा कर लो। मानसी पूजा हो सकती है। पूजा केवल यंत्रवत् न हो जाए इसीलिए जागृति आवश्यक है। पांच-पांच घंटे पूजा करो तो अच्छी बात लेकिन क्या जरूरत है? देश-काल अनुसार मन प्रसन्न रहे। मेरी बात कहां तक पहुंचती है, कब पहुंचेगी, अल्लाह जाने! लेकिन मैं कहता रहता हूं, जहां तक मेरा संबंध है, मैं रामकथा जब गाने लगता हू तो ये मेरी कोई धर्मशाला तो नहीं है, प्रयोगशाला है। इसमें से कुछ फ़लित हो। प्रयोग हो रहा है। जहां एक जगह यज्ञ हो रहा है। एक जगह ग्रंथ चिंतन हो रहा है। ग्रंथपठन, स्वाध्याय हो रहा है। एक जगह कथन हो रहा है। पहुंचे हुए श्रोता सुन रहे हैं।

'उत्तरकांड' पूरा उपासनाकांड है। सत्संग हो रहा है। तीसरा घाट कर्म का घाट है। आदमी अकर्मण्य न हो जाए। पूरा कर लो फिर तुम्हारे अंदर से कृपा का एक रूप प्रगट हो जाएगा। एरपोर्ट में आज-कल के विज्ञान के कारण नियत स्थान पर हमारा पैर पड़ता है तो दरवाजा खुल जाता है। इससे थोड़े दूर पड़े तो दरवाजा नहीं खुलता। साधक को चाहिए अकर्मण्य न रहे, कर्मठ रहे। कर्म का घाट, वहां गंगा बहती है, यमुना बहती है, सरस्वती बहती है निरंतर। चौथा है शरणागति का घाट जिसको महाप्रभुजी नि:साधनता कहते हैं। न हम सोच सकते हैं। न हम में ज्ञान है। न हम में उपासना है। 'शरणागति' शब्द उच्चारना बहुत आसान है। हमें शरणागत बोलना भी अच्छा लगता है लेकिन तत्त्वत: शरणागति करीब-करीब असंभव है। जहां हो जाती है वहां तो कुछ करना शेष रहता ही नहीं। कई लोग कहते हैं, हम फलां के आश्रित है, फलां के फोलोअर्स है। एक चिठ्ठी है, 'आपके कितने फोलोअर्स है?' आवो धंधो कराय? डाह्यो माणस न करे! मजबूरसाहब का शे'र है-

ना कोई गुरु ना कोई चेला।
अकेले में मेला मेले में अकेला।

मैंने तो कितने समय से कहा है, मैं किसी का गुरु हूं ही नहीं। मेरे कोई शिष्य नहीं है, मेरे हजारों श्रोता है। कई कहते हैं, हम मोरारिबापू के चेले हैं, प्राईवेट प्रेक्टिस करने के लिए! सावधान रहे, मेरा कोई चेला नहीं है साहब! न मैं किसी का गुरु हूं। मैं मेरा दादा, मेरे ग्रान्डफाधर, उनका मात्र शिष्य हूं और उन्होंने मुझे जो कहा है उसको ईमानदारी से, आपकी दुआओं से कोशिश कर रहा हूं कि मैं कर सकूं। उसने मुझे पांच वस्तु बताई थी। उसमें एक 'सावधान' शब्द आता है तो मैं कह दूं, ये पांच चीज का ध्यान रखना। मैंने उस बचपन में लिख ली थी। आपको भी उपयोगी हो सकती है। उसने पहली बात मुझे यह कही कि जहां तक संभव हो सत्य बोलना और प्रिय सत्य बोलना। मैं ईमानदारी से यह कोशिश कर रहा हूं। बाकी हम संसारी है, पूरा सत्य न भी बोल सके। दूसरी बात मुझे बताई गई थी कि 'रामचरित मानस' और 'गीता' का रोज पाठ करना। दो चौपाई, पांच चौपाई। 'भगवद्गीता' का एक अध्याय। निरंतर यह चलता रहता है। तीसरी बात यह बताई गई थी कि किसी की इर्ष्या मत करना और निंदा मत करना। मेरे लिए तो इन पांच सूत्रों में जगत का सार आ गया, सब शास्त्र आ गया यदि मैं यह सब कर सकूं। इर्ष्या और निंदा में फ़र्क इतना कि इर्ष्या जीव से होती है, निंदा जीभ से होती है। इर्ष्या का वाहन है जीव और निंदा का उपकरण है जीभ। चौथा सूत्र कहा था, जीवन में जहां तक संभव हो मौन रहना। मौका आते ही मौन रहना और अपने इष्टमंत्र का जप करना। लेकिन यह 'सावधान' शब्द खास यूज़ हुआ था। वैसे तीसरा है लेकिन मैं आखिर में रख रहा हूं, वो था अहंकार से सावधान रहना। क्योंकि अहंकार मिट जाए यह बहुत मुश्किल है। कम से कम हम सावधान रहे वो भी ठीक है। 'विनयपत्रिका' में कुंभकर्ण को अहंकार कहा गया है। कुंभकर्ण के बारे में हम जानते हैं। वो छ: महिने सोता है फिर एक दिन जागता है। खाता है फिर सोता है। तुलसी का इशारा शायद यह है, अहंकार मिटना मुश्किल है, कम से कम सो जाए यह ही अच्छा है। उपद्रव खड़ा न करे। तो मेरे दादाजी कहते थे बेटा, अहंकार से सावधान रहना। आदमी में क्षमता हो और अहंकार करे वो क्षम्य

है। किसी में संगीत का ज्ञान हो, अच्छा सर्जक है वो अभिमान करे, वो भी प्रशंसनीय तो नहीं है लेकिन क्षम्य है। लेकिन कई लोगों में कुछ नहीं होता लेकिन अहंकार, अहंकार, अहंकार!

लोग कहते हैं, 'सीताराम परिवार।' मेरा कोई परिवार नहीं। पूरी दुनिया मेरा परिवार है। मेरा नाम लेकर कोई गलत ग्रूप बनाकर लाभ ले तो सावधान रहना। कई लोग जाते हैं, हम 'सीताराम परिवार' के हैं। हमारा अच्छा उतारा कर दो! हम जहां जाते हैं हम को ए.सी. रूम ही मिलती है! कथा लेने आते हैं उनको भी साफ़-साफ़ कहता हूं, कोई भी बात करनी हो, मेरे से सीधा कहना। बीच में कोई है ही नहीं। कथा लेनी हो, सीधे आए। कोई प्रोग्राम, कोई तारीख लेनी हो, सीधे आए। दूसरे को बीच में डाला, मैं तारीख देनेवाला नहीं! इतना साफ़-साफ़ बोलता हूं तो भी लोगों को होता है, उसका संपर्क करे तो मिले! परमात्मा के पास पहुंचने के लिए भी कोई दलाल, वाया व्यवस्था है ही नहीं। यू केन गो डायरेक्ट। ऐसे निकलोगे ना तो तुम्हें जिसकी जरूरत होगी ऐसा कोई न कोई तुम्हें मारग में मिल जाएगा। ये आध्यात्मिक व्यवस्था है। जरूरत पड़ेगी तब कोई आकर खड़ा रह जाएगा। तीन बार बोलूं, मैं किसी का गुरु नहीं हूं, मैं किसी का गुरु नहीं हूं, मैं किसी का गुरु नहीं हूं। इसका मतलब मेरा कोई चेला नहीं है, मेरा कोई चेला नहीं है, मेरा कोई चेला नहीं है। कविता की भाषा में बोलूं, मेरे फोलोअर्स नहीं है, सब मेरे फ्लावर्स है। मेरे 'रामचरित मानस' की पुष्पवाटिका के तरह-तरह के फूल है। और यह जो फ्लावर्स खिले हैं उसका मैं माली हूं। उनकी मावजत करता हूं। कभी दोहे से, कभी चौपाई से, कभी सूत्र से। छोटा बच्चा है तो मुस्कुराकर मावजत कर लेता हूं। कोई युवा श्रोता होता है तो कंधे पर हाथ रखकर पूछ लेता हूं कि बेटा, कैसे हो? कोई बुज़ुर्ग हो तो प्रणाम करके पूछ लेता हूं कि दादाजी, कैसे हो? सब मेरे फ्लावर्स है। वृंदावन गार्डन है। उससे बड़े-बड़े होंगे लेकिन मेरा जो गार्डन है ऐसा कोई गार्डन नहीं होगा विश्व में। याद रखना, मैंने सूत्र मुंबई की कथा में दिया हुआ, मेरा फोलोअर्स नहीं है, मेरे सब फ्लावर्स है।

लोग बहुत गलत-गलत भ्रांतियां फ़ैलाते हैं! सीधे कथा लेने न आए, वाया-वाया आए और कथा मैं दो-चार साल पहले दे नहीं सकता। फिर वो वायावाले होते हैं वो सब कहेंगे, नहीं मिलेगी! फिर कुछ ऐसे तत्त्व घूस जाते है वो यह बोलते हैं, इतने पैसे नहीं दोगे तब तक कथा नहीं मिलेगी! मैं दुनिया में कहीं भी किसी का एक पैसा नहीं लेता। पोथी लेकर जाता हूं, पोथी लेकर लौटता हूं। कोई माई का लाल बता तो दे कि बापू ने कथा का एक पैसा लिया! दुनिया को समझना बहुत मुश्किल है। और ज्यादा समझने की जरूरत भी क्या है?

हमारे जीवन में सत्संग करते-करते यदि सावधानी आ जाए तो इक्कीसवीं सदी का यह संन्यास है। और विधिवत् संन्यास लेने के बाद भी यदि जागृति न रही तो अविधिसर संसार है। नरसिंह मेहता सावधान रहा। कौन कहेगा कि नरसिंह मेहता संन्यासी नहीं था? मीरां संसार में रही, सावधान रही। नाची, कभी ताल भंग हुआ? सावधान रही। कभी सूरभंग हुआ मीरां का? सावधान रही। मुझे लगता है, नाचनेवाले के घुंघरू

कभी-कभी टूट जाते हैं लेकिन मीरां का तो घुंघरू भी नहीं टूटा। तालभंग नहीं हुआ। सूर-स्वर भंग नहीं हुआ। मर्यादा नहीं टूटी। ये जागृति, अवेरनेस। कहने का मतलब मेरे भाई-बहन कि सावधानी संन्यास है, असावधानी संसार है। मौसम बदलती रहती है लेकिन 'रामचरित मानस' की पुष्पवाटिका, उसमें लिखा है, 'जहँ बसंत रितु रही लोभाई।' जनक की पुष्पवाटिका में निरंतर वसंतऋतु रहती थी। वसंतऋतु को तुलसीजी ने आध्यात्मिक अर्थों में श्रद्धा कहा है। श्रद्धा तो बारहमासी होनी चाहिए। ये जो पुष्पवाटिका है व्यासपीठ की, ये जो फ्लावर्स है उसमें कायम वसंतऋतु रहती है। जब तक चले गुणातीत श्रद्धा है। यह शास्त्र का नियम है, आदमी कोई भी कार्य करता है इसके पीछे उसका गुण उसको प्रेरित करता है, याद रखना। भारतीय मुनिओं का मनोविज्ञान है। कोई आदमी रजोगुणी होगा तो अत्यंत प्रवृत्ति करेगा, सफल हो न हो। तमोगुणी होगा उसका कार्य-कलाप अहंकार, क्रोध, दूसरों को दबाना, कैसे भी ओवरटेईक करना, हत्या तक पहूंचना! उसकी सभी प्रवृत्ति तमोगुणी हो जाती है। जो सत्वगुणी होते हैं उसके क्रिया-कलाप कोई साधक के होते हैं। वो खोजेगा, भटकेगा, अपने लिए निकलेगा। सावधानी मिन्स जागृति। ओशो जिसको जागरण कहते हैं, उसको तुलसी सावधान कहते हैं।

ओशो बड़ा प्यारा शब्द लेकर आते हैं कि साधना के आरंभ में श्रमण होना चाहिए लेकिन अंत तो ब्राह्मण होता है। ब्राह्मण है प्रसाद, श्रमण है पुरुषार्थ। खूब कर लो, खूब कर लो, आखिर में ब्राह्मण बनो, ओशो कहते हैं। पहले जो ब्राह्मण बन जाता है वो कुछ नहीं पाता है! श्रमण का अर्थ किया उसने प्रयास और ब्राह्मण का अर्थ किया प्रसाद, ब्राह्मणत्व, समर्पण। आपको भरतजी की ओर ले जाना है धीरे-धीरे। तो देवता लोग जब भगवान की स्तुति करते हैं तब कहते हैं, 'मन हरख...' ब्रह्मा आदि स्तुति करे तो मन में हरख होने लगा। हमारा पूजापाठ, हमारी स्तुति, हमारी साधना- मन में हर्ष हो तभी समझना हम सावधान है, जागृत है। मेरी व्यासपीठ ने बार-बार कहा, शंकराचार्य ने जो उद्घोषणा की शायद ही किसी ने की होगी, 'प्रसन्न चित्ते परमात्म दर्शनम्।' आपका चित्त प्रसन्न रहे वो ही परमात्मा का दर्शन है। मन हर्षित हुआ, तन पुलकित हुआ, दोनों हाथ जोड़ दिए गए सावधानी से और तुलसी कहते हैं, 'सावधान मति धीर।' सब सावधानी से स्तुति करते हैं। मन को प्रसन्नता मिले ऐसे जागृत रहे। शरीर में रोमांच हो। शरीर में नर्तन पैदा हो। आंखों में नीर आ जाए। पागलों जैसी दशा है। जिसने पाया है उनको सब ने पागल नामक प्रमाणपत्र दिया है। ये सबको नहीं मिलता। जलन मातरी का एक शे'र है कि जो दुनिया में पागल है, ये हकीकत में पागल है या नाटक है, पता नहीं चलता!

समजदारी थी अळगा थई जवानां सौ बहानां छे।
मने शंका पडे छे के दीवाना शुं दीवाना छे?

सावधान रहे दोनों प्रकार से जीवन जीने में, संसार में भी और संन्यास में भी। भरत का चरित्र सावधानी से सुनो, ऐसा जनकजी ने कहा है क्योंकि भरतचरित्र असह्य प्रेम का नाम है। ये रामकथा है यह रामशास्त्र नहीं है, प्रेमशास्त्र है। इसीलिए मैं रामकथा को प्रेमयज्ञ कहता हूं। कोई शास्त्रीय ग्रंथ हो उसका एक नियम होता है। उसके सिद्धांत को आदि, मध्य और अवसान में प्रस्थापित करना पड़ता है। 'रामचरित मानस' में प्रेम केन्द्र में है इसीलिए आदि में भी प्रेम है, मध्य में भी प्रेम है और अंत में भी प्रेम है। इसीलिए प्रेमशास्त्र है। भरतचरित्र प्रेमप्रवाह है, आंसूओं का चरित्र है। अयोध्या की सभा में आखिर में ऐसा निर्णय होता है कि भरतजी पूरी अयोध्या को लेकर वन में जाए और राम से मिले। राम और भरत जो बात करे और जो निर्णय हो दोनों भाई कुबूल करे। कभी-कभी धर्म निर्णय नहीं दे पाता। कभी-कभी प्रेम निर्णय दे पाता है। अयोध्या है धर्मभूमि, चित्रकूट है प्रेमभूमि। बड़ी-बड़ी समस्याओं का जवाब प्रेम देता है।

भरतजी प्रेमावतार है और प्रेम के चरित्र को सुनने के लिए सावधान होना बहुत जरूरी है। तो भरतजी पूरी अयोध्या को लेकर चित्रकूट जाते हैं। हम सावधानी से सुनेंगे तो यह यात्रा में जो-जो घटना घटी है वो हमारे जीवन का सत्य है। पूरी अवध निकली है। जिस कैकेई माँ ने यह किया उस माँ को भी साथ लिया है। कोई कटुता नहीं! यहां मंथरा का नाम नहीं लिखा है कि ले गए कि नहीं लेकिन व्यक्तिगत रूप में मुझे कोई पूछे तो मैं मेरी जिम्मेवारी से कहूं कि भरत मंथरा को भी चित्रकूट ले गए होंगे क्योंकि प्रेमी भेद नहीं कर सकता। हृदय जब प्रेमपूर्ण होता है तो कोई बुरा दिखता ही नहीं। चित्रकूट की यात्रा

में पांच पडाव ऐसे आते हैं जहां एक परमप्रेमी की कसौटी होती है। कोई कहते हैं ना हमारी इतनी भक्ति फिर भी विघ्न आते हैं! हमनें इतना विश्वास रखा फिर भी विघ्न आता है! विघ्न आएंगे ही। यह परीक्षा है। असह्य प्रेम की भूमिका में भरत चले आए तब पांच विघ्न आए हैं और हमारे जीवन में भी हरिप्राप्ति के, प्रसन्नता के लिए यात्रा करते हैं तब पांच विघ्न आते हैं। कोई न कोई बाधाएं आती है।

पांच प्रसंग है जो विशेष रूप में आपके सामने रखना चाहता हूं, क्योंकि भरतकथा भवबंधन से मुक्त करती है और भवबंधन से मुक्ति के लिए सावधानी से सुनना बहुत जरूरी है। प्रेम ऐसी मंज़िल है साहब, उस पर यात्रा करने में पांच-पांच खतरे आते हैं। केवल धरा पर प्रेम की बातें करना आसान है। याद रखना मुंबई के भाई-बहन, बुद्धपुरुष का यह स्वभाव है, हम तो आनंद करके सो जाते हैं और वो रात में तुम्हारे लिए ओवरटाईम देता है। यह नियम है साहब! गुरुपद आसान नहीं है। जो कहते हैं, गुरु की जरूर नहीं है, सीधे पहुंच जाए। यह रास्ता हो तो भले कोई सीधे पहुंच जाए लेकिन हम जैसों को तो कोई चाहिए कि जो हमें घीरे रहे, जो हमारे लिए ओवरटाईम करे। मुझे तो गुरु बोल पर पूरा भरोसा है।

श्री भरतजी असह्य प्रेम की एक इतनी ऊंची अवस्था पर है कि खतरे शुरू हुए। पगबाधाएं शुरू हुई। पांच बाधाएं चित्रकूट की यात्रा में आई वो प्रत्येक साधक के जीवन की घटना है। भरतजी पूरी अयोध्या को लेकर निकले हैं। पहला विघ्न जो आया प्रेम की दशा में वो था शृंगबेरपुर तक भरत का समाज पहुंचा तो सबसे पहली मुश्किल यह आई कि यह निषाद, यह गुह भरत के बारे में गैरसमझ करने लगे कि आखिर कैकेई का बेटा है। भरत के लिए राम को बन जाना पड़ा है और यह भरत शायद निष्कंटक राज्य करने के लिए निकला हैं। गैरसमझ पैदा हो गई! जब भरत के स्वभाव से परिचित हुए तब जो विरोध खड़ा हुआ था वो शमित हो गया और सब भरत के आवकार में लग गए। जो परम प्रेम की यात्रा करता है उसको पहला विघ्न आता है, रास्ते में आया समाज उसके लिए गैरसमझ करेगा। मीरां प्रेममार्ग में चली। जहां-जहां गई लोगों ने गैरसमझ पैदा की। जो भी थोड़ा सत्य की, प्रेम की, करुणा की मात्रा में निकलेंगे खोजी बनकर, यह होगा ही! समाज गैरसमझ करेगा। समाज को और कोई काम नहीं है! फिल्म की वो पंक्ति मैं अक्सर गाता हूं-

कुछ तो लोग कहेंगे, लोगों का काम है कहना।
छोड़ो बेकार की बातों में कहीं बीत न जाए रैना।

समाज तो बोलेगा। उसका काम ही तो यही है! प्रेमपथ के साधक की पहली कसौटी है, बीच में आनेवाला समाज गैरसमझ पैदा करे। विघ्न नंबर एक अथवा तो विघ्न न कहूं, कसौटी कहूं। हरि के मारग में जाए उसको मेरी समझ में विघ्न आते ही नहीं, कसौटी होती है। एक दूसरा विघ्न भी आया वहां, वो था जब सब यात्रा में चले तो भरतजी ने निर्णय किया कि राम-लक्ष्मण-जानकी बन में नंगे पैर पदयात्रा कर रहे हैं और में रथ में यात्रा करूं तो ठीक नहीं है। भरत ने मन में ठान लिया था कि भगवान पैदल गए तो मैं ऐसे ही बिना पदत्राण जाऊंगा, ऐसा ही मन में व्रत ले लिया। बात फैलती गई। कौशल्या आदि माताएं डोलियों में बैठी थी। वहां बात गई कि माँ भरत नीचे पैदल चल रहे हैं और पूरी अयोध्या मर्यादा, आदर जो कहो, सब नीचे उतर रहे हैं। डोली का पर्दा उपर करके माँ ने भरत के सिर पर हाथ रखा, भरत, तेरे मन की स्थिति समझती हूं कि राम पैदल चले तो तुझे रथ में बैठना मंजूर नहीं। प्रेम की जो स्थिति हैं वो मैं जानती हूं। लेकिन तू नीचे उतर गया तो पूरी अयोध्या नीचे उतर गई। हमारी जिम्मेवारी है। और बीच में कोई बीमार हो, कुछ-कुछ हो जाए! भरत रथ में बैठ गए। मेरे इस घाट के अर्थ में जब परमतत्त्व को पाने के लिए आदमी कोई व्रत धारण करता है तो उस व्रत में बाधा आने लगती है। बाधा तब तक नहीं आती जब तक दूसरों को व्रत की बात का पता न हो। मेरे भाई-बहन, कोई व्रत रखो तो इस तरह रखो कि किसी को पता न चले, वर्ना बाधा आएगी।

भरतजी फिर आगे गए गंगा पार करके। भरद्वाज ऋषि के आश्रम में प्रयाग में आये। 'मानस' में लिखा है, रिद्धि-सिद्धि ने भरत के स्वागत में इतनी व्यवस्था गंगा के तट पर की जो स्वर्ग में न हो! जिसकी रुचि जैसी थी ऐसे भोग में सब प्रवृत्त हो गए। चकवा और चकवी पक्षी के बारे में कहा जाता है कि रात्रि के वियोगी पक्षी है। यहां गोस्वामीजी सुंदर रूपक देते हैं। भरद्वाज ने आश्रमरूपी पिंजड़े में भरतरूपी चकवा और संपत्तिरूपी चकवी को मिलाने की कोशिश की लेकिन संपित्तरूपी चकवी

भरतरूपी चकवा पर प्रभाव न डाल पाई। अलिप्त रहे भरतजी। बाकी सब डुबे! मेरी व्यासपीठ को लगता है, प्रेम की अवस्था के साधक की यात्रा का आज तीसरा कसौटीकाल है कि कोई साधु हमारी कसौटी करे। कोई पहुंचा हुआ हमारी कसौटी करे। आदमी साधना के पथ पर जाएगा धीरे-धीरे तो समृद्धियां बहुत आएगी। ऐसे तो कई लोगों के अनुभव होंगे शुद्धहृदय से जिसने भजन किए होंगे, रिद्धि-सिद्धियां पैरों में लौटती है लेकिन उसमें चकवा-चकवी की तरह जो साधक बच गया वो चित्रकूट तक पहुंच पाता है। मेरी समझ में यह तीसरी कसौटी है समृद्धि, सुविधाएं। फिर तो वहां से यात्रा आगे बढ़ती है। देवताओं को चिंता हुई कि यह भरत तो राम के पास जाकर रामको मनाकर जरूर लौट आएंगे और राम अयोध्या लौट गए तो हमारी पूरी योजना विफ़ल हो जाएगी! अब कुछ ऐसा विघ्न या कसौटी डाली जाए कि भरत और राम की मुलाकात ही न हो। यद्यपि असफल रहे लेकिन इस घटना को मेरा घाट कहता है, दैवी तत्त्वों के द्वारा विघ्न डालना। साधना में दैवी तत्त्वों का भी विघ्न आता है। हमारी प्रेमयात्रा के बाधक असुर ही होते हैं ऐसा नहीं है, दैवी तत्त्व भी बाधक होते हैं! बृहस्पति के समझाने पर इन्द्र रुक गया और भरतजी इस कसौटी से भी पार हो गए। अब बिलकुल चित्रकूट निकट आ गया। चित्रकूट के नजदीक भरतजी आते हैं। हजारो लोग साथ में है। सुबह का समय है। भगवान राम अपना नित्य कर्म पूरा करके जो रोज सुबह में महात्मा लोग आते थे उनका सन्मान करके वेदिका पर बैठे है। भगवान उत्तर दिशा की ओर देख रहे हैं तो भगवान को लग रहा है, आज उत्तर दिशा की ओर कुछ उहापोह है! यह क्या है? इतनी मिट्टी क्यों उड़ रही है? इतना कोलाहल क्यों हो रहा है? इतने में कौल, किरात, भील दौड़ते-दौड़ते आए और उन्होंने कहा, अयोध्या के राजकुमार भरत, शत्रुघ्न पूरी अयोध्या को लेकर चित्रकूट आए हैं। जब यह खबर राम के कानों में आई, तुलसी राम की प्रतिक्रिया क्या होती है उसका एक चित्र खिंचते हैं-

सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल।।

अत्यंत सुमंगल बैन राम ने जब सुना। मन प्रसन्न हो गया। शरीर पुलकित हो गया राम का। आनंद से मन भर गया। आंखों में आंसू आ गए। लेकिन दूसरी ही क्षण भगवान राम सोचने लगे, चिंतित हो गए! भरत के आगमन का कारण क्या होगा? भगवान निर्णय नहीं कर रहे हैं! इतने में एक और खबर आई। एक आदमी ने आकर रामजी से कहा कि ठाकुर, चतुरंगिनी सेना है साथ में। भरत तो आ रहे हैं लेकिन पूरी सेना! भगवान को नेगेटिव विचार नहीं आते क्या? सोचा, चतुरंगिनी सेना लेकर मेरा भाई आ रहा है तो जरूर अयोध्या में शायद निर्णय हो गया है कि चित्रकूट में जाकर ही राजतिलक कर दिया जाए! मन इधर-उधर है! भगवान सचकित है, दुविधा में है। भगवान के हृदय को कुछ ठेस लगी है, ऐसा लक्ष्मणजी को प्रतीत हुआ। और समय पर नीति विचार की उद्घोषणा करने लगे, 'भगवन्, बाप, पहली बार अविनय कर रहा हूं। आपकी आज्ञा लिए बिना में कभी बोलता नहीं। आज आपको बिना पूछे मैं बोल रहा हूं। महाराज, भरत आ रहे हैं। आप चिंतित हुए है ना? महाराज, विष की वेली को कभी अमृत का फल नहीं लगता। कैकेई के उदर से जन्मा इसमें सद्भाव नहीं हो सकता! ठाकुर, ज्यादा बोलूं तो मुझे माफ़ करना लेकिन भरत ने हम पर कम अत्याचार नहीं किया है! अवध छोड़ दी। यहां आकर रहे तो यहां भी चैन लेने नहीं देता! राम के प्रति अत्यंत समर्पण के कारण आई यह जड़ता है। अत्यंत प्रेम में जाड्य आता ही है। बहुत बोले। दोनों भाईयों को मैं मृत्युदंड दूंगा! एक आवेश है!

हमारे जीवन में सत्संग करते-करते यदि सावधानी आ जाए तो इक्कीसवीं सदी का यह संन्यास है। और विधिवत् संन्यास लेने के बाद भी यदि जागृति न रही तो अविधिसर संसार है। नरसिंह मेहता सावधान रहा। कौन कहेगा कि नरसिंह मेहता संन्यासी नहीं था? मीरां संसार में रही, सावधान रही। नाची, कभी ताल भंग हुआ? सावधान रही। कभी सूरभंग हुआ मीरां का? सावधान रही। तालभंग नहीं हुआ। सूर-स्वर भंग नहीं हुआ। मर्यादा नहीं टूटी। ये जागृति, अवेरनेस। कहने का मतलब मेरे भाई-बहन कि सावधानी संन्यास है, असावधानी संसार है।

राम की दशा बहुत विपरीत हुई है! एक तो यह प्रेमी आए और भरत को मार देने की बात लक्ष्मण करे और भगवान लक्ष्मण को डांट भी नहीं सकते। क्योंकि लक्ष्मण इतना समर्पित है। बहुत बोल गए लक्ष्मण! मृत्युदंड का एलान कर चुके लक्ष्मण! भगवान ने लक्ष्मण का हाथ पकड़ा, लखन! अब देवो, शीलवान आदमी कोई निकट की व्यक्ति भूल करे तो उसको कैसे समझाते हैं यह सावधानीपूर्वक सुनो। राम ने क्या कहा? 'लक्ष्मण, तू कई बार बोलता है भैया लेकिन सच कहूं, आज जो तू बोला है अद्‌भुत बोला है! तुने यह भी कहा न भाई कि राजपद मिलता है तो बडे-बडे नीति छोड देते हैं। तेरी बात बिलकुल सही है। सच्ची बात है, बड़े-बड़े को पागल कर देता है राजमद।' लेकिन पीठ पर हाथ घुमाते-घुमाते बामुश्किल अपने आंसू को रोकते हुए भगवान राम ने कहा कि 'लखन, राजमद आए बिना नहीं रहता। लेकिन मेरी बात भी सुन। भरत एक ऐसा प्रेमी है जिसको राजमद नहीं आ सकता। लक्ष्मण, मुझे तेरी कसम और अपने स्वर्गीय पिता की आण, इस विश्व में, त्रिभुवन में भरत के समान कोई पवित्र भाई नहीं है।' प्रभु का प्रमाणपत्र मिल गया! लक्ष्मण समझ गए। प्रभु के पैर पकड़े, 'मेरी भूल हुई!' असह्य प्रेम की अवस्थावाला आदमी जब अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए यात्रा करता है तो पांच विघ्न आते हैं। व्रतभंग; बीच में आनेवाला समाज गैरसमझ करे; महात्मा लोग कसौटी करे; देवतालोग कसौटी करे। लेकिन तब समझना, चित्रकूट बहुत निकट आ गया है। और जब परिवार का ही कोई आदमी तुम्हारी हत्या करने का एलान करे तब समझना, चित्रकूट निकट है। क्योंकि कभी-कभी प्रेमियों में निकटवालें ही मार देने तक तूल जाते थे! जिसस को शूली पर यहां से जाकर हिंदुओ ने चढ़ाया? सुक्रात को जहर पिलाने के लिए भारत से कोई गए थे? अथवा तो मीरां को जहर देने कोई अमरिका से आया था? अपनेवाले ही जहर पिलाते हैं! करबला के मैदान में जो कुछ मरे उसमें मारने कोई हिन्दुस्तान से गया था? और कुरुक्षेत्र में जो मरे उसमें कोई करबला से आए थे?

आग तो अपने ही लगाते हैं।
गैर तो सिर्फ़ हवा देते हैं।

गांधी को गोली किसने मारी? कोई अमरिकन ने आकर मारी? कोई आफ्रिकन ने मारी? कोई जपानीझ ने आकर मारी? अपने वाले, निजी ही जब प्रहार करे तब 'हे राम' बहुत निकट होता है। मेरे साधक भाई-बहन, यह प्रेमशास्त्र है। यह आंसूओ का ग्रंथ है। शरमद का किसने सर काटा? मनसूर को किसने चढ़ाया? भगतबापू ने गुजराती में लिखा-

कलम धूजे कथा लखता अमारी पापपोथीनी।
महात्मा संत मोहनने अमे पोते हणाव्या छे।
सीताने घोर जंगलमां अमे पुत्रो जणाव्या छे।
कृष्णने भीलना बाणे अमे पोते हणाव्या छे।

साधक भाई-बहन, अत्यंत प्रेमपथिक के लिए पांचवां विघ्न है कि निकट की व्यक्ति ही हत्या तक पहुंचेंगे! लेकिन अत्यंत प्रेम की अवस्था एक लेवलवाली हो, लेबलवाली न हो तो समझना, राम स्वयं खड़ा होकर निर्दोष घोषित करेंगे। इसीलिए आप सावधान होकर सुनिएगा क्योंकि सावधान होकर सुनने से आपके जीवन यात्रा की कसौटियां, पगबाधाएं भी मिट सकती है। यह पडाव सबके जीवन में आ सकता है कुछ परिवर्तन के साथ। भरतकथा असह्य प्रेम की यात्रा है। उसमें यह सब बाधाएं आती है। इसीलिए सावधान होकर सुनना चाहिए।

इस कथा में लौकिक सावधानी और साधना की अलौकिक सावधानी की बात हो रही है। भरतचरित्र अद्‌भुत है। संगदिल का यह गौमुख है। यह प्रेम की गंगोत्री है। भरत प्रेम का ही अवतार है। कथा से तो आप परिचित है ही। भारत में कौन कथा के प्रसंगों से परिचित न हो? गांधीजी तो कहते हैं, भारत में जिसने 'रामायण' और 'महाभारत' का परिचय नहीं लिया उसको हिन्दुस्तानी कहलाने का अधिकार ही नहीं। आज मेरे लिए तो बहुत खुशी की बात है कि इतनी तादात में लोग कथा सुनते हैं इतने सालों से और खास करके युवान लोग सुनते हैं। यह इक्कीसवीं सदी का सगुन है। हर जगह मैं यह मंजर देखता रहता हूं और मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। कहने का मतलब मेरा यह है कि युवानी कथा सुन रही है यह बहुत मेरी दृष्टि में शगुन है। 'रामचरित मानस' की कथा प्रसंगों के माध्यम से, सूत्रों के माध्यम से, शब्दों के माध्यम से हमारी समस्याओं का बहुत बड़ा उकेल है। कोई भी समस्या ऐसी न हो कि जिसकी कुंजी न हो। लेकिन मुश्किल यह है कि या कुंजी कोई गलत जगह पर हमनें रख दी है या तो खो दी है! बाकी समस्याओं का जवाब शास्त्र देता है।

जिनकी आंख में आंसू आए वो ही अध्यात्मजगत में सावधान है

'रामचरित मानस', उसमें से 'सावधान' शब्द को चुनकर हम कुछ जीवन उपयोगी संवाद कर रहे हैं। पहले या दूसरे दिन यहां कहा गया, सावधान का यहां दो अर्थ है। एक तो लौकिक व्यवहार का सावधान और एक अलौकिक जगत की सावधानी। दोनों जरूरी है। लेकिन जिन पंक्तियों का आश्रय किया गया उसमें तीन शब्द है, 'सावधान सुमति भवानी।' भवानी के लिए विशेषण है सुमति, सुबुद्धिवाली। और सुनयना को जनकजी ने सावधान होकर सुनने को कहा तो दो विशेषण लगाए-सुमुखी और सुलोचनी। मेरा घाट सोचता है कि यद्यपि सबको सावधान रहना चाहिए, लेकिन जो सुमति है, सुमुखी है और सुलोचनी है उसको तो ज्यादा सावधान रहना चाहिए। सीधा-सा अभिप्राय है कि जो दुर्बुद्धि है उसको सावधान करने जाओ तो भी उसकी कुबुद्धि के कारण जो कर रही है, कुबुद्धि उसको ही सावधान का लेबल लगाएगी जो कुमुख है, सुमुख नहीं है। बहुत से अर्थ हैं सुमुख के। जो मुख निंदा न करे, गाली-गलोच न करे, असत्य न बोले, हरिनाम ले, शुभ बोले यह सब सुमुख है। जो कुमुख है वो तो सावधान नहीं रहते और रहने की कोशिश भी करे तो भी वो अपनी बात पर अड़े रहेंगे। जो सुलोचनी है उसके लिए सावधान रहने की जरूरत है। जिसके नयन सुंदर नहीं है यानी जिसकी दृष्टि ठीक नहीं है, यद्यपि उसे भी सावधान रहने की जरूरत तो है, लेकिन यह रहे न रहे! यदि हमारा मुख सुमुख है तो हमें ज्यादा सावधान रहना होगा। यदि सुंदर चेहरा अथवा तो सुंदर चेहरे में आती इन्द्रियां जैसे नेत्र, कान, नाक, होठ, जीभ इन सबके कारण जिसका चेहरा सुंदर है उसको सावधान रहना चाहिए। जो असुंदर है वो असावधान रहे तो कोई दोष तो देगा, लेकिन बुरा भी नहीं मानेगा कि ठीक है, वैसी ही जिसकी दृष्टि! बुद्धि ठीक है उसे विशेष सावधान रहना पड़ता है।

कुछ उलटे सूत्र हैं 'मानस' के जो मैं आपके सामने कहने जा रहा हूं। हम किसी के घर जाते हैं और कोई रोता है तो हम कहते हैं कि भाई, सावधान हो जाओ। धैर्य धारण करो। यह व्यावहारिक सावधानता है। 'रामचरित मानस' में तो लिखा है कि रोना ही सावधानी है, जागृति का प्रमाण है। दुन्यवी दृष्टिकोण से भी देखें तो जब बच्चा पैदा होता है यदि वो रोए ना तो डोक्टर परिवार सब चिंतित होते हैं कि रो नहीं रहा! उसको रुलाया जाता है। उसका रोना उसकी जीवंतता का प्रमाण है। रोना वो यह मृतक नहीं है, जाग रहा है, इसका प्रमाण है। रोना इस ईश्वर की बनाई दुनिया में इनके प्रवेश का स्वागत है। व्यवहारजगत में कोई रोए तो कहते हैं, मत रोओ, हो जाएगा सब ठीक। यह भी ठीक है। आदमी अपने हाथ इधर-उधर उछाले। सब की अपनी-अपनी रीत होती है। चलने में भी सब अपनी अदाओं से गति करते हैं। हमारी हाथ-पैर की संगति होती है। हम ऐसे ही चलते हैं, लेकिन अध्यात्मजगत कहता है, यह सावधानी लौकिक है। यह निरंतर हिलते हाथ मानी निरंतर कर्म करनेवाले निरंतर चलनेवाले हाथ यह सावधान तो माना जाएगा लेकिन इस चांचल्य को अध्यात्मजगत में सावधान नहीं कहा है। ये निरंतर चलित, हिलते हुए, निरंतर इधर-उधर फ़ैलाए हुए हाथ, निरंतर किसी को धक्का देनेवाला हाथ, यह निरंतर किसी को एक ओर हटाकर अपने आपको आगे करने की दृष्टि, चेष्टा करनेवाला हाथ अध्यात्मजगत में सावधान तभी माना जाता है जब किसी के सामने जुड़ जाए।

उलटे सूत्र हैं बाप! ताले में कुंजी डालकर जिस मोड़ की ओर घुमाकर ताले को बंद किया जाता है उसी से ताला नहीं खुलता, विपरीत दिशा में कुंजी घुमाने से ही ताला खुलता है। विज्ञान के जमाने में कोई नया ताला आए तो बात ओर है, लेकिन हमारे जमाने में जो भी दिशा तालेवाले ने निश्चित की हो बंद करने की, उसकी विपरीत दिशा में खुलता है। कुछ विपरीत सूत्र है सावधानी का। आप चुपचाप बैठे रहते हैं, अच्छा है। कोई बोलता रहे आपको असर नहीं होती, दूसरों को लगेगा, यह असंग-सा हो गया है। आप देखे ना, कुछ बहुत अच्छा हो रहा है लेकिन आप नज़रें झुकाए बैठे हैं, चलो अच्छा है। यह भी सावधानी है कि चलो बैठे हैं एक जगह शांति से। अध्यात्मजगत की सावधानी

का नाम 'मानस' में लिखा है। आप बैठे न रहे, लेकिन आपके भीतर एक नृत्य चलता हो। आपके रोम-रोम में किसी की आवाज़ सुनकर पुलक भाव प्रकट हो। अभी उसकी कल्पना की है, रोम-रोम में ऊर्जा का संचार होने लगा है; यदि उनकी आवाज़ सुन ली जाएगी तो क्या होगा? और यदि वो छू लेगा तो क्या होगा? यह जो क्रमशः भावांतरण जो है, अध्यात्मजगत उसको सावधान कहते हैं। प्रत्येक इन्द्रियों में सुसंवेदना भरी है वो सावधान है। जिनके शरीर के अंग संवेदनाशून्य हो गए हो वो एक जगह बैठा ही लगेगा, बिलकुल बैठा है। कोई उधामा नहीं कर रहा है, लेकिन यह जाग्रत नहीं है। शरीर पुलकित हो, नयन में नीर हो, उछलते हुए हाथ किसी को प्रहार करने या किसी को धक्का देने के बजाय किसी बुद्धपुरुष के पास बैठे-बैठे जुड़ जाए समझो, अध्यात्म सावधानपना आया है। लौकिक सावधानी जरूरी है, लेकिन अंततोगत्वा दो कौड़ी की है! अध्यात्म सावधानी यह शाश्वत है। आपकी बुद्धि कई निर्णय करे, अधीर होकर सोचे कि मैं ये कर लूं। बुरा ही सोचे ऐसा मेरा कहना नहीं, अच्छा भी सोचे। मैं यह करूं, यह करूं, मैं यात्रा में जाऊं, मैं वहां जाऊं, मैं थोड़ा समय ध्यान करूं। कुछ संगीत सिखूं। अच्छी बात है। आपको लगे, मेरे में ऊर्जा है, मैं चित्र दोरूं, मेरे में जो कुछ रचनात्मक पड़ा है, मैं जो नया कर सकता हूं, यह सब अच्छी वस्तु है। लेकिन फिर भी एक वस्तु भीतर न हो तो यह सावधानी के लिए कर्म नहीं है। कुछ रुचि के कारण, आनंद के कारण है कि मैं कुछ करूं। लेकिन सावधान तो तभी आता है जब ऐसे कार्य में आपकी बुद्धि स्थिर हो जाए।

तो बाप, सांसारिक जगत में आदमी बड़ा धीर है, गंभीर है, सावधान है। उसकी आंख में आंसू भी नहीं आए। व्यवहारपक्ष अच्छा है। जिनकी आंख में आंसू आए, अध्यात्मजगत में वो ही सावधान है।

सुनि बिरंची मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरी कर सावधान मति धीर।।

यह पांचों का समन्वित रूप है यहां। तो मेरे भाई-बहन, आप मुस्कुराते रहे, हंसते रहे, एन्जोय करते रहे, कौन नहीं चाहेगा? लेकिन यह मुस्कुराहट, यह आनंद सींचा जाता है कृष्णप्रेम के आंसू से। उसकी सिंचाई यह है और इसीलिए जिनकी आंख में आंसू आए वो अध्यात्मजगत का सावधान है। यह सही में सावधान व्यक्ति है जो रो सकता है। आदमी को ज्वर-सा लगता है फिर थोड़ा रोओगे तो क्रमशः ठीक हो जाएगा, सावधान हो जाएगा। यह घरेलू दवा है। यह प्रत्येक व्यक्ति के घर की औषधि है। प्रेम की औषधि मेडिकल स्टोर में नहीं मिलती, शायद बनी ही नहीं उसकी औषधि। जिससे मैं थोड़ा गुज़रता हूं तो लगता है, प्रेम की औषधि है दृगजल, नेत्रजल। अच्छा हुआ कृष्ण ने गिरिराज उठा लिया। इन्द्र ने इतनी बर्षा की और लाख बर्षा इन्द्र करे तो भी ब्रज डूबता नहीं। कौन डूबो सकता है ब्रज को? लेकिन गोपीजन और गोपाल की आंसूओं की वर्षा में ब्रज गोवर्धन डूब जाए इसकी संभावना बनी रहती थी। सावधान वो है मेरी समझ में जिसकी आंख में अश्रु है। सावधान वो है मेरी समझ में, जिसकी बुद्धि स्थिर है। 'मैं यह निर्णय लूं, यह लूं?' कितने निर्णय लोगे आप? मैं कोई आपको अकर्मण्यता नहीं सिखाने आया हूं। लेकिन कहीं तो रोक लगानी पड़ती है। सुरदास कहते हैं, 'अब मैं बहुत नाच्यो गोपाल।' यह भगवद्कथा क्यों है? यह चार घंटे की चर्चा क्यों है? आप सब व्यस्त है। यह चार घंटे आप दूसरी जगह होते तो अर्थ के रूप में कुछ कमा सकते हैं। लेकिन यह सब छोड़कर आप यहां क्यों आते हैं? शायद अपनी बुद्धि को स्थिर करने का जितनी मात्रा में हुआ हो एक सफ़ल प्रयोग है।

तो बाप, भगवद्कथा में, शुभ कार्यों में, भगवद्वार्ता में, शुभ प्रवृत्ति में आपकी आंखो में आंसू आए कृष्ण स्मरण से तो इससे उत्तम क्या है? आपने कभी सोचा है, हमारे जैसे जीवों पर कितनी कृपा होती है? कृपा होती है तब हम जिंदा रह सकते हैं। आप सोचिएगा, हमारे पास समय नहीं है। हम यह सब अनसुना कर देते हैं! अच्छा है, इस व्यस्त नगरी में आप जिज्ञासु बनकर सुन रहे हैं। मैं आपका स्वागत करता हूं। मेरे श्रोताओं के प्रति मेरी ममता है। कहते हैं, ममता तो बंधन में डालती है। तो डाले तो डाले, लेकिन है तो है! मैंने दो-तीन दिन पहले कहा ना, प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। लेकिन इसमें कोई गैरसमझ भी न करें। अपने धर्म में उसको स्वतंत्रता होनी चाहिए कि मैं राम को चुनूं। मैं कृष्ण को चुनूं। वेद को चुनूं। अपने धर्म में अपनी जो प्रवाही परंपरा है गंगा जैसी, शुद्ध-बुद्ध परंपरा है उसमें आप किसी भी देवी-देवता का

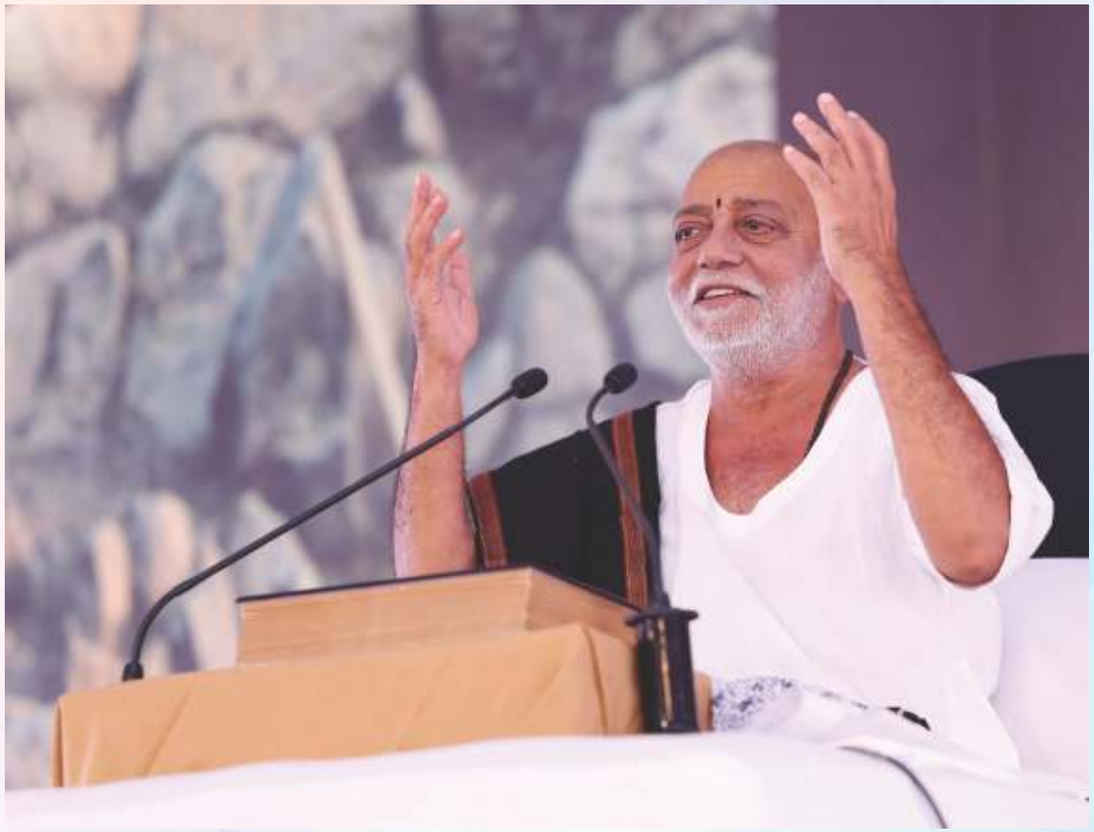

चुनाव कर सकते हैं। किसी भी धर्मग्रंथ का चुनाव कर सकते हैं। मंत्र की भी स्वतंत्रता होनी चाहिए। बाप, आपको जो रास आए, जो अच्छा लगे। आप थोड़ा खुद तो समय दो और फिर सोचो कि हमें जो मिल गया है वो जिस समय जैसा हमको मिलना चाहिए था वैसा ही मिला है, ऐसा आत्मा कहेगी। कोई कहे कि इसको गुरु बना ले, उसमें पड़ना मत। गुरु कोई शोपिंग सेन्टर का फ़र्निचर नहीं है कि तुम पांच-दस जगह देखो, पसंद करो फिर बदल दो! यह कोई चीज़ नहीं है, पदार्थ नहीं है। मैं तो अपने बारे में सोचता हूं तो मुझे लगता है कि मुझे ठीक समय पर घर में ही मिल गया। कोई दूसरा मुझे रास भी नहीं आता। तो वैसे सब साधक की यह अनुभूति होती है। विवेकानंदजी को नहीं हुआ होगा कि ठाकुर ही मेरे लिए बस। बुद्धपुरुष अपनी-अपनी अवस्था के आधार पर हमें गाईड करते हैं। मुझे लगता है, योग आता है तो सही समय पर कोई मिल जाता है।

यूं ही कोई मिल गया था सरे राह चलते चलते ...

कोई ऐसे मिल जाता है। यह जीवन बहुत मिस्ट्री है। बड़ा रहस्य है यह जीवन। सावधान रहे। मिल जाता है। गनी दहींवाला ने लिखा है गुजराती में -

न धरा सुधी, न गगन सुधी, नहीं उन्नति, न पतन सुधी,
अहीं आपणे तो जवुं हतुं, फक्त एकमेकना मन सुधी।
दिवसो जुदाईना जाय छे, ए जशे जरूर मिलन सुधी।
मारो हाथ झालीने लई जशे, हवे शत्रुओ ज स्वजन सुधी।

तो बाप, कोई मिल जाता है चलते-चलते और जो मिला वो बराबर है कि नहीं उसकी परीक्षा कैसे करें? जो तुम्हारे छाप-तिलक छिन ले तो समझना, जो मिला ठीक मिला है। तुम्हारे गले में कंठियां डाल दे, छाप-

तिलक डाल दे, तुम्हें बंधन में डाल दे! और कहीं जा नहीं सकते, दूसरे को प्रणाम कर नहीं सकते, दूसरे को सुन नहीं सकते, ऐसी बेडियां डाल दे तो समझना, जो मिला है वो ठीक नहीं। 'पाकीज़ा' का जो एक गीत है वो सद्गुरुवाला नहीं है क्या? मुझे तो ऐसा लगता है।

इन्हीं लोगों ने ले लिया दुपट्टा मेरा ...

इन्हीं लोगों मीन्स गिने-चुने बुद्धपुरुष। बाकी तो फिल्म में सब अच्छा है। संगीत भी अच्छा है। सामग्री भी अच्छी है। मेसेज भी अच्छा है। वहां कुछ बुद्धपुरुषों की ओर संकेत है कि इन्हीं लोगों ने, किसी ने मेरा दुपट्टा ले लिया मीन्स कोई बुद्धपुरुष किसी बहन-बेटी का दुपट्टा छिन ले यह बुद्धपुरुष है कि बुद्धु है? दुपट्टे का अर्थ होता है वेदांत में द्वैत। दु पट मानी दो पर्दे, दो पट। बुद्धपुरुष क्या करता है? हमारा द्वैत छिन लेता है। न अब तू, न अब मैं। अद्वैत प्रकट कर देता है। लेकिन 'पाकीज़ा' का गीत एक बड़ी अच्छी बात करता है कि किसी की भी न मानो तो-

हमरी न मानो सिपहिया से पूछो।

सिपहिया मानी रक्षक, चौकीदार। 'राम दुआरे तुम रखवारे।' यह रक्षक है। हमारी न मानो तो हनुमान को पूछो -

जय जय जय हनुमान गोसांई।

कृपा करौ गुरुदेव की नांई।।

कोई खास प्रकार का लिबास हो? नहीं। निकाल दिया। कोई छाप-तिलक? करो तो ठीक है, लेकिन जरूरी भी नहीं है। फरज़ियात किसी से तिलक न करवाओ। मौज आए तो तिलक करो। मौज आए तो माला रखो। मौज आए तो कथा सुनो। दबाव कोई न करे। कथा करुणा के मैदान में होती है, हिंसा के मैदान में नहीं होती कि तुम जबरदस्ती सुनवाओ! यहां दबाव न डाला जाए। मुझे तो दबाव डालना भी नहीं पड़ता और यदि दबाव डाला होता तो इतने को कंठी पहना दी होती कि सबसे ओवरटेईक कर लिया होता!

तो, 'यूं ही कोई मिल गया था।' कोई मिल जाता है। और तब जाकर तसल्ली होती है कि नहीं, मेरे लिए तो बस, यही है।

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।

साधक के मन में निश्चित्त हो जाता है और कोई निश्चित्त रूप से मिल जाता है। तो बाप, कोई मिल जाता है। कहा तो जाता है जोग, लगन, ग्रह, वार, तिथि पर मिलता है। कभी-कभी तो ऐसी कृपा हो जाती है जोग, लगन, ग्रह, वार, तिथि पांचों अनुकूल न हो तो भी, प्रतिकूल परिस्थिति में भी मिल जाता है। सवाल है सावधानी का। तो रोना है सावधानी। और फिर आप भूल न जाओ, सावधानी का पर्याय है जागृति, अवेरनेस। तो मैं आप से बात कर रहा था, हमको पता नहीं, हम पर कितनी कृपा है? इन कृपाओं का अनुभव करने से जीवन की सावधानी बहुत बरकरार रहेगी।

आप थोड़ा गिन लीजिए कुछ कृपा के प्रदेश। हम सब पर कितनी कृपा है! सबसे पहले हम पर मानी गई है कृपा अपनी माँ की कृपा। उपनिषद ने ठीक क्रम उठाया, 'मातृदेवो भव।' याद रखना मेरे फ्लावर्स, सबसे पहले हमारे पर है मातृकृपा। आप देखिए, इसमें अपवाद कोई भी हो सकता है, लेकिन मैं लगभग पचपन साल से तो घुम ही रहा हूं। मैंने कभी ऐसा नहीं सुना कि किसीने अपनी माँ के बारे में कुछ ऐसा कहा हो। सबको अपनी माँ अच्छी लगती है। होगा कोई जिसको अपनी माँ अच्छी न लगती हो या फिर कोई कारण हो, कलि का प्रभाव हो, अल्लाह जाने! लेकिन अपनी माँ बहुत प्यारी लगती है। और मैंने यह भी पाया कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी माँ की तुलना में कोई माँ नहीं दिखती। मैं अपनी ओर से देखूं तो मुझे लगे, मेरी सावित्री माँ जैसी कौन? आप अपनी माँ को देखें तो आपको ऐसा लगेगा कि मेरी माँ के समान कौन? उसको ग्रंथकार ने कहा है मातृकृपा। पहली कृपा है मातृकृपा।

दूसरी कृपा का नाम है साधक के लिए पितृकृपा। पिता की भी कृपा है। पढ़ाना है, बड़ा करना है, धंधे में लगाना है। युवान भाई-बहन, कितने भी पढ़ो, पढ़ो। व्यासपीठ आनंदित रहेगी सदा-सदा आपको देखकर लेकिन अपने घर में अपने माता-पिता की इज्जत करो। शास्त्र ने कहा है, अपने काम में जाते हुए जो वडीलों को प्रणाम करके जाता है, लौटकर फिर प्रणाम करके विश्राम करता है, उसकी चार चीज़ बढ़ती है। 'आयुर्विद्यायशोबलम्।' ऐसा नीतिकारों ने कहा है। तो उसकी आयुष्य बढ़ती है। आयुष्य बढ़े कि न बढ़े मुझे खबर नहीं। बढ़े तो अच्छी बात है, लेकिन मैंने तो ऐसा

अर्थ निकाला है और मेरे लिए सटीक लगता है, बड़े बुज़ुर्गों को प्रणाम करने से आयुष्य बढ़े इसका मतलब अब हमारी जितनी आयुष्य होगी उसमें प्रसन्नता बढ़ती है। मैं यही अर्थ करता हूं। माता की कृपा से, पिता की कृपा से विद्या बढ़ती है, यश बढ़ता है, कीर्ति बढ़ती है और बल बढ़ता है, शरीर की ताकत बढ़ती है, ऐसा ग्रंथों में आया है।

तीसरी कृपा है आचार्यकृपा। आचार्यकृपा मानी हमारे टीचर, आप जिससे संगीत सीख रहे हो वो आपका आचार्य, आप कोलेज में पढ़ते हो, तुम्हारा अध्यापक आदि जो हो उसकी एक कृपा। उसके बाद एक चौथी कृपा बताई गई है वो है देवकृपा। हमारे घर में जो इष्टदेव हो अथवा तो जो जिसको भजते हैं। आपके घर में पुष्टि सेवा हो और आप शंकर को मानते हो तो तुम्हारा यह देव। मैं एक बार और क्लियर कर दूं कि मैं जब यहां पुष्टि की चर्चा करता हूं तो कोई यह न समझे मैं यह कहता हूं कि आप 'हनुमानचालीसा' बोलो। नहीं, आप 'यमुनाष्टक' ही बोलो। मेरे लिए 'यमुनाष्टक' ही हनुमान है, 'हनुमानचालीसा' है। मैं यह सब कुछ परिवर्तन कराने नहीं आया हूं। केवल यह तुच्छ है, यह उच्च है, यह भेद छोड़ो। मेरा तो एक सीधा समीकरण है कि जो आदमी दूसरे को हलका समझे उसके समान दुनिया में कोई हलका है ही नहीं। यदि तू श्रेष्ठ है तो तुझे कोई हलका दिखना ही नहीं चाहिए। व्यक्ति के जीवन में श्रेष्ठता आती है तो निम्नता के विचार अपने आप मेढक की तरह कूद-कूद कर निकल जाते हैं। शुभ की स्थापना करो, अशुभ अपनेआप निकल जाएगा। सब को स्नान करना चाहिए, लेकिन जिसने स्नान किया उसको यह कहने का अधिकार नहीं है, जो स्नान नहीं करता है यह हलका है और मैं श्रेष्ठ हूं। कोई तिलक नहीं करता है उसे वो पापी है, ऐसा मत कहो। कभी-कभी तो तिलक पाप को छिपाने का छाता होता है! किसी को हलका न समझे। शताब्दियों से हिन्दुस्तान मार खा रहा है! अब यह निकलना चाहिए अस्पृश्यता। यह जो भेद, यह जो विषमता मिटनी चाहिए।

चौथी देवकृपा। अपने घर में जो देव हो। न मानते हो तो कोई बात नहीं। तुम देव हो। पांचवीं कृपा हमारे आंगन में बिना बुलाए कोई अवधूत, कोई बालक, कोई साधु, कोई फ़कीर आ जाए उसकी कृपा होती है। पहले तो गांव में महमान आते थे तो घर में आनंद-आनंद होता था। अतिथि की कृपा मानी जाती है बाप! शास्त्रकार कहते हैं, किसी ने लकड़ी मारी और गाय को भेजी ऐसे नहीं। आपका दरवाजा खुला है और सुबह में कोई गाय माता प्रसन्नता से जुगाली करती हुई तुम्हारे आंगन में आए, खाने के लिए नहीं, पेट तो भरा है, तो समझना, गोकृपा है। एक होती है मंत्रकृपा। तुम्हारे गुरु का दिया हुआ मंत्र है जो आप कभी बदलते नहीं। तो जीव पर एक कृपा होती है मंत्रकृपा। यह तो बहुत प्रभावक है। आगे दो कृपा आती है। एक होती है ईशकृपा, इष्ट की कृपा। आपका जो इष्ट है उसकी कृपा। और इससे भी आगे एक सर्वश्रेष्ठ कृपा है आपके सद्गुरु की कृपा। आचार्य कृपा बिलग है, सद्गुरु कृपा बिलग है। सद्गुरु का सीधा-सादा अर्थ है, जो तुम्हारी प्रसन्नता के लिए खाता है वो सद्गुरु है। वो तुम राजी रहो इसीलिए तुम्हारी सेवा कुबूल करता है वो सद्गुरु है। उसको कोई जरूरत नहीं है, लेकिन मेरा आश्रित प्रसन्न रहता है उसी के लिए वो करता है। जिसकी नौकरी में हरि रहता है उसको किसकी सेवा की जरूरत पड़े?

किसी बुद्धपुरुष को परखना हो तो चार वस्तु को देखो। उसको मानना और फिर उसके मार्गदर्शन में चलना और मौका मिले तो उसके संग में जीना। एक, जिसकी जुबां में प्रेमभरा सच हो। बोले तो आपको विश्वास हो जाए कि यह आदमी झूठ नहीं बोल सकता। आपको भीतर से आवाज़ आए कि नहीं, उसने यह बात की तो सत्य ही होगी। लेकिन वो सत्य प्रिय होगा। प्यारा सत्य जो बोले यह बुद्धपुरुष का लक्षण है। दूसरा, जिसके जीवन में शास्त्र की मर्यादा है। बंधन नहीं, मर्यादा। बंधन बिलग वस्तु है, मर्यादा बिलग वस्तु है। यहां मेरे ऊतरने के लिए कोई व्यवस्था न हो तो यह मेरे लिए बंधन है। लेकिन मेरे लिए जो ऊतरने की व्यवस्था हो वहां से संभलकर मैं नीचे ऊतरूं यह मर्यादा है। शास्त्रों की मर्यादा है कि हमारे महाप्रभुजी ने क्या कहा? गोसांइजी ने क्या कहा, षोड़श ग्रंथों ने क्या कहा? उसकी मर्यादा। जबान में प्रिय सत्य हो। आचरण में शास्त्र की विवेक और मर्यादा हो। आंख में अमृत हो। आंख शिकारी न हो। देखे तो शोषण करता हो ऐसा न दिखे, पोषण करता हो। एक फिल्म की पंक्ति है -

तेरी आंखों के सिवा दुनिया में रखा क्या है?
ये उठे सुबह चले ये झूके शाम ढले।
मेरा जीना मेरा मरना, इन्हीं पलकों के तले।

आंख में पवित्रता, निर्दोषता और अमृत हो। जो आंखें हमारी ओर ताके तो हमारी आंख में आंसू आ जाए! आप ने कभी महसूस किया होगा कि परम आंखोंवाले लोग वो बुद्धत्व को पाए वो किसी के सामने थोड़ा देखकर थोड़ा मुस्कुरा भी दे उनकी धारा बहने लगेगी ऐसी पवित्र आंखें।

तो कभी आंख भीगी ही न हो वो जागृत नहीं है, मूर्छित है। कृष्णनाम से जिनकी आंख डबडबाए वो जागृत है, वो स्वस्थ है। इधर-उधर फैले हाथ कामनाओं के लिए असीम रूप में फैलते हैं यह हाथ कोई दर पर जाकर जुड़ जाए, इसका नाम है सावधान। इसका नाम है जागृति। जीवन संवेदना से भरा हो। कोई अच्छी घटना सुने और तन पुलकित न हो जाए, कोई असर ही ना हो, इसका क्या अर्थ? यह तो बीमार है! मुर्दे का परिचय है! यह है सावधान। बुद्धि स्थिर होने लगे। बुद्धि व्यभिचारिणी न होने लगे। यह सब सावधान के हैं लक्षण, ऐसा 'मानस' में लिखा है।

अब जो समय बचा है उसमें रामजनम की कथा का गायन करना है, रामजनम तक पहुंचना है संक्षेप में। रामकथा का जो क्रम है उसमें भगवान याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज को कथा सुनाते हैं। कागभुशुंडि गरुड को कथा सुनाते हैं। तुलसीजी अपने मन को कथा सुनाते हैं। लेकिन इससे पूर्व शंकर पार्वती को कथा सुनाते हैं। सती जो दक्ष के यज्ञ में जल गई थी, पार्वती के रूप में प्रकट हुई और फिर शिव और पार्वती का विवाह हुआ। हिमालय की पुत्री के साथ शिव की शादी हुई। कुछ काल बीता और फिर पार्वती ने कार्तिकेय को जन्म दिया। तुलसीदासजी ने उसका आध्यात्मिक अर्थ करते हुए कहा कि षडानन, छः मुखवाला पुत्र का जन्म हुआ वो पुरुषार्थ का प्रतीक है। कार्तिकेय को छः मुख है इसका मतलब पुरुषार्थ को छः मुख होते हैं। जिसको मेहनत करनी है, पुरुषार्थ करना है, कमाना है, कार्यक्षेत्र में रहकर आगे बढ़ना है, उसको यह सूत्र बहुत उपयोगी है।

एक बार भगवान शंकर कैलास के सदाबहार वेदविदित वटवृक्ष के नीचे सहज आसन में बिराजमान है। पार्वती ने उनके पास जाकर कहा, एक जन्म बीतने के बाद भी मेरे मन में संदेह अभी गया नहीं कि राम ब्रह्म है कि सामान्य मनुष्य है? आप मुझे रामतत्त्व के बारे में खोलकर बताए। भगवान शिव प्रसन्न हुए। पार्वती को दो बार धन्यवाद देते हैं, हे हिमालय पुत्री, तुम धन्य हो, तुम उपकारी हो। 'रामचरित मानस' में लिखा है कि कथा का जो निमित्त बनता है वो उपकारी है। शिवजी ने कहा, परमतत्त्व वो है देवी, जो बिना पैर चलता है, बिना कान सुनता है, बिना आंख देखता है, बिना हाथ स्पर्श करता है। अलौकिकता जिसका स्वभाव है। वो कभी निराकार से नराकार होता है। व्यापक व्यक्ति बनता है। कौन-कौन कारण यह तो इदमित्थ कोई नहीं कह पाता फिर भी एक-दो कारण की कथा सुनाऊं। एक-दो कथा तो मैंने आपको सुना दी। फिर नारदजी की कथा आती है। फिर स्वयंभू मनु-शतरूपा की कथा आती है। फिर प्रतापभानु की कथा आती है। कथा ऐसी है कि प्रतापभानु को शाप मिला वो रावण बन गया। उसका भाई कुंभकर्ण बन गया। उसका मंत्री विभीषण हो गया। रावण, कुंभकर्ण और विभीषण ने बहुत तपस्या की। दुर्गम और दुर्लभ वरदान प्राप्त किए। ऐसे वरदानों की प्राप्ति के बाद वो समाज में आतंक फैलाने लगा। धरती अकुला उठी। गाय का रूप धारण किया धरती ने और ऋषि-मुनियों के पास जाकर रोने लगी कि हे महात्माओं, मुझे बचाओ। सब देवताओं के पास गए। फिर सब मिलकर पितामह ब्रह्मा के पास गए। और ब्रह्मा की अगवानी में देवों ने समूह में पुकार किया। आकाशवाणी हुई, 'धैर्य धारण करो। कोई भी कारण नहीं और मानो तो कोई भी कारण मैं धरती पर अवतार लूंगा।' मेरे इस घाट को इस पूरी घटना का सूत्रात्मक अर्थ इतना-सा लगता है कि व्यक्ति को चाहिए पहले पुरुषार्थ करे। खूब कड़ी मेहनत करे। पुरुषार्थ की सीमा पूरी हो जाए उसके बाद प्रार्थना करे। प्रार्थना की सीमा पूरी हो जाए फिर प्रतीक्षा। यह तीन सूत्र है। हम लोग पुरुषार्थ करते हैं, प्रार्थना करते हैं, लेकिन प्रतीक्षा नहीं कर पाते! व्यक्ति पुरुषार्थ करे, प्रार्थना करे और प्रतीक्षा भी कर लेगा, उसके बाद प्राकट्य होगा। उसके घर हरि किसी न किसी रूप में प्रकट होगा।

तुलसीजी हमें श्री अयोध्या लिए चलते हैं, जहां राम का जनम होनेवाला है। रघुवंश, रघुकुल के वर्तमान सम्राट दशरथजी। कौशल्यादि प्रिय रानियां है। पवित्र

आचरण है। पत्नियां अपने पति को आदर देती है। पति अपनी पत्नियों को प्यार देता है। सुखी दांपत्य है। लेकिन एक ग्लानि, एक पीड़ा है दशरथजी को कि मेरे जीवन में पुत्र सुख नहीं है! दुनियावालें अपनी समस्या राजदरबार में लाते हैं। राज दरबारवालें कहां जाए? गोस्वामीजी ने सुंदर मार्गदर्शन किया कि राजदरबार आज गुरुद्वार जा रहे हैं। वशिष्ठ के आश्रम में पधारे हैं। अपना सुख-दुःख सुनाया। वशिष्ठजी ने कहा, अब आप मेरे पास आ ही गए हैं, एक नहीं, चार पुत्र के पिता हो जाओगे। पुत्र कामेष्टि यज्ञ करना होगा। शृंगीऋषि को बुलाया गया। पुत्रकामेष्टि यज्ञ का आरंभ हुआ है। भक्तिसहित आहुतियां डाली गई। आखिरी आहुति के समय यज्ञपुरुष स्वयं यज्ञकुंड से हाथ में प्रसाद का चरु लेकर प्रकट हुए हैं। प्रसाद का चरु वशिष्ठ के हाथ में यज्ञपुरुष ने दिया और कहा, आप राजा को दीजिए और अपनी रानियों को यथायोग्य बांट दे। दशरथजी ने रानियों को बुलाया और प्रसाद बांटा। 'मानस'कार कहते हैं, माताओं ने यह प्रसाद की खीर उदर में धारण की और माताएं सगर्भा स्थिति का अनुभव करने लगी। गोस्वामीजी कहते हैं, स्वयं श्रीहरि कौशल्या के गर्भ में आए। ईश्वर सर्व समर्थ है। कुछ भी कर सकता है।

भगवान को प्रकट होने का अवसर निकट आया। योग, लगन, ग्रह, बार, तिथि पंचांग अनुकूल हुआ। त्रेतायुग है। चैत्र मास। नौमी तिथि है। मध्याह्न का समय है। मंद-सुगंध शीतल वायु बह रही है। बन कुसुमित होने लगे हैं। नदियों में मानो आज अमृत बह रहा है। पूरा अस्तित्व भावविभोर था, क्योंकि परम आनेवाला है। पाताल के नागदेव, पृथ्वी के ब्राह्मणदेव, स्वर्ग के सूर्यदेव सब भगवान की गर्भ स्तुति करने लगे। माँ कौशल्या को अपने प्रासाद में मंगल सगुन हो रहे हैं। प्रत्यक्ष रूप में परमात्मा नारायण स्वयं प्रकट हुए हैं। माँ कौशल्या ने भगवान के अद्भुत रूप की झांकी की। माँ को ज्ञान हुआ। परमात्मा मुस्कुराए और फिर सुना है मैंने संतो से कि माँ ने मुख फेर लिया! श्री हरि ने कहा, 'माँ, मैं तेरे घर आया और तू मुख फेर रही है?' माँ ने कहा, 'आप आए स्वागत, लेकिन आप वचन भूल गए हैं। आपने गत जनम में वचन दिया था कि मैं आपके घर पुत्र बनकर मानव रूप में आऊंगा। आप तो नारायण के रूप में है। आप तो बाप बनकर आए! मुझे तो मनुष्य चाहिए और वो भी पुत्र के रूप में। मनुष्य को चार हाथ नहीं होते, दो होते हैं। आप दो हाथ कर लीजिए।' भगवान दो हाथ कर लेते हैं। कौशल्याजी से पूछा, 'अब हो गया मनुष्य?' 'अब मनुष्य लगते हो, लेकिन जन्म लेनेवाला बच्चा इतना बड़ा थोड़ा होता है? छोटे हो जाओ।' भगवान नवजात बच्चे की तरह छोटे हो गए। फिर माँ ने कहा, 'बालक तो हो गए हैं, लेकिन बोलते हो बड़ों की तरह! भगवन्, बच्चा तो रोएगा।' माँ की बानी सुनकर परात्पर ब्रह्म, अखिल ब्रह्मांड का उपनिषदों का ब्रह्म, ईश्वर, भगवान, परमात्मा जो नाम देना चाहो, माँ कौशल्या के अंक में आकर एकदम बालक की तरह रोने लगे। शिशु रुदन सुनकर अन्य रानियां दौड़ आई। उसको आश्चर्य हुआ। भ्रम के साथ मंदिर में आई और अनुपम बालक को माँ कौशल्या के अंक में रोते हुए देखकर दास-दासियां दौड़े! लोग दौड़े और महाराज के पास जाकर कहने लगे, 'महिपति, बधाई हो, बधाई हो। आपके घर पुत्रजन्म हुआ है।' वशिष्ठ महाराज पधारे। निर्णय हुआ, ब्रह्म बालक बनकर आया है। राजा को परमानंद हुआ है। पूरी अयोध्या, अरे, त्रिभुवन में रामजन्म की बधाई और उत्सव आरंभ होता है। मुंबई के मेरे इस घाट से आप सभी को रामजन्म की बधाई हो।

लौकिक सावधानी जरूरी है, लेकिन अंततोगत्वा वो दो कौड़ी की है! अध्यात्म सावधानी यह शाश्वत है। सांसारिक जगत में आदमी बड़ा धीर है, गंभीर है, सावधान है। उसकी आंख में आंसू भी नहीं आए। व्यवहारपक्ष अच्छा है। जिनकी आंख में आंसू आए, अध्यात्मजगत में वो ही सावधान है। यह सही में सावधान व्यक्ति है जो रो सकता है। आदमी को ज्वर सा लगता है फिर थोड़ा रोओगे तो क्रमशः ठीक हो जाएगा, सावधान हो जाएगा। यह घरेलू दवा है। यह प्रत्येक व्यक्ति के घर की औषधि है। प्रेम की औषधि मेडिकल स्टोर में नहीं मिलती, शायद बनी ही नहीं उसकी औषधि। जिससे में थोड़ा गुज़रता हूं तो लगता है, प्रेम की औषधि है दृगजल, नेत्रजल।

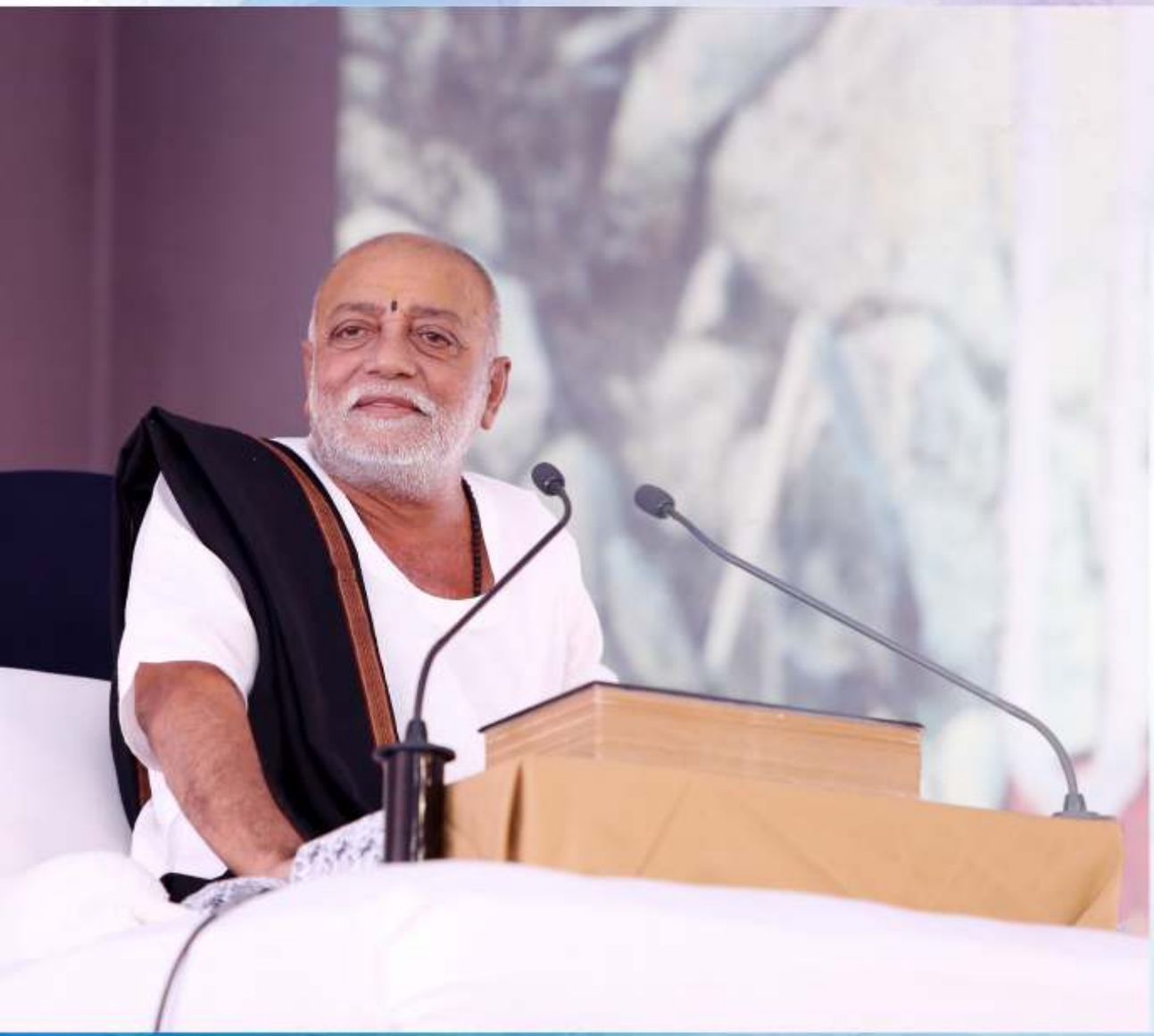

कथा-दर्शन

- धर्म केवल किताबों में नहीं है। धर्म आदमी के कलेजे में है।
- धर्म नृत्य है। धर्म मुस्कुराहट है। धर्म प्रसन्नता है।
- मुस्कुराने की मना कर दे वो धर्म के लिबास में अधर्म है।
- हरिनाम चौबीस घंटे की थकावट उतार देगा, आपको रिचार्ज कर देगा।
- हनुमंतत्त्व भरोसे का मूर्तिमंत रूप है।
- परमारथ ने अवतार लिया उसका नाम राम है और प्रेम ने अवतार लिया उसका नाम भरत है।
- जिसको भजन करना है, सावधान रहना है, वो इधर-उधर राव नहीं करते, रोते रहते हैं।
- जिनकी आंख में आंसू आए वो अध्यात्मजगत का सावधान है।
- जीवन की प्रत्येक क्षण में जो सावधान रहता है वो साधु।
- जो सावधान हो गया उसको समाधान तुरंत मिल जाता है।
- हमारा धैर्य भंग होता है। महापुरुष का धैर्य भंग नहीं होता।
- गुरु व्यक्ति भी हो सकता है, व्यक्तित्व भी हो सकता है और अस्तित्व भी हो सकता है।
- भरोसा हो तो कथीर भी सोना बन जाता है और न हो तो सोना भी कोई काम का नहीं!
- वैष्णवजन दो वस्तु कभी ना भूले, आश्रय और अश्रु।
- स्मरण साधन नहीं है, अवस्था है।
- प्रेम व्याख्यायित नहीं हो पाता।
- हृदय जब प्रेमपूर्ण होता है तो कोई बुरा दिखता ही नहीं।
- जो भोग भगवान को भूला दे वो भोग रोग हो सकता है।
- हमारे भीतर भी सद्गुण और दुर्गुणरूपी सुर और असुर मंथन कर रहे हैं।
- मुखर आदमी का आदर्श कभी मौनी नहीं बन सकता।
- सुधारने की कोशिश मत करो, सब को स्वीकारने की कोशिश करो।

सेवा में, स्नेह में और सम्मान में सावधान रहना

आज की कथा के आरंभ में उन सभी को व्यासपीठ की ओर से प्रणाम और मकरसंक्रांति की बहुत-बहुत शुभकामनाएं, बधाई। 'मानस-सावधान', जिसके आधार पर हम संवाद बनाए हुए हैं। कुछ ओर आगे बढ़ें। प्रसंग के अनुरूप कुछ जिज्ञासाएं है। एक भाई ने तो ऐसा लिखा है; गुजराती में लिखा है, मैं हिन्दी में पढ़ूं। 'मैं व्यासपीठ का बहुत आदर करता हूं।' धन्यवाद। 'कथा की बातें सुनकर मुझे बहुत अच्छा लगता है।' शुक्रिया। 'सुन-सुन कर मुझमें बहुत परिवर्तन आया है।' खुश रहो। लेकिन मुझे एक बात का बहुत अफ़सोस है वो मैं लिख रहा हूं। दो साल पहले एक कथा में मैं एक रिश्तेदार के घर शादी में आया था। कथा के पंडाल में बैठकर मैंने शराब छोड़ने का संकल्प किया, लेकिन यह संकल्प मैं निभा नहीं पा रहा उसका मुझे बहुत अफ़सोस है। मैं क्षमा चाहता हूं। हो सके तो माफ़ कर देना। लेकिन एक बात निश्चित है कि व्यासपीठ से संवाद सुनकर मेरे में बहुत सकारात्मक परिवर्तन आया है। मैं आभारी हूं।'- मुंबई का एक युवक। कहीं कथा सुनकर आपने शराब छोड़ने का संकल्प किया फिर शुरू हो गया। शुरू रखो। आपकी अपेक्षा में कुछ जवाब बिलग रहा होगा! यह भी शुरू रखो, कथा सुनना भी जारी रखो। यदि कथा सुनते-सुनते आपके मन में यह बात आई, शराब छोड़ दूं। नहीं छोड़ पाए, कोई बात नहीं। लेकिन मुझे अच्छा लगता है कि कथा तो नहीं छोड़ी आपने! कहते हैं कि शराब कडवी होती है। खैर! सुना है, अनुभव तो किसी जनम का नहीं है। लेकिन कथा तो मधुर होती है और इस मधुर कथा को सुनते-सुनते कभी न कभी शराब छूट जाएगी। शुरू रखो इसका मतलब यह नहीं है कि मैं कोई आदेश कर रहा हूं कि आप पीओ। मेरा मतलब है, एक बार कथा के कारण छूटी है तो फिर कथा छुड़वा देगी। मैं नहीं छुड़वा पाउंगा, कथा ही छुड़वाएगी। व्यक्ति नहीं छुड़वा पाएगा, वक्तव्य छुड़वा देगा। कथा जारी रखो, बस।

श्रीमन् वल्लभाधीश की आज्ञा है कि व्यक्ति को दो काम करना, एक तो सेवा और दूसरी कथा सुनना। तो आप कथा सुनते हैं इसलिए स्वागत है। कथा सुनते हो। कथा में रुचि है। आप में सकारात्मक परिवर्तन आया है तो भले आप शराब पीते हो, छोड़ देना धीरे-धीरे। अभी तो ठीक है, लेकिन कथा सुनो। कथा छुड़वा देगी। बड़ी चीज़ हाथ में आती है तो छोटी चीज़ छूट जाती है। कथा सुनो प्यारे! इसका मतलब यह गलत अर्थ मत करना कि मैं पीने की इजाज़त दे रहा हूं। कथा से छूटी थी तो कथा फिर छुड़वा देगी। क्रमशः कम करो। कथा का रस लो। लेकिन यदि यह पीने की आदत बन गई है और आप कथा के बिना रह भी नहीं सकते हो तो भी आप अच्छा रस पी रहे हो। कथा का रस महान है। और महाप्रभुजी ने तो वहां तक कहा है कि कथा कहनेवाला कैसा होना चाहिए? कथा सुननेवाला कैसा होना चाहिए? 'जलभेद' नाम का एक ग्रंथ महाप्रभुजी का, उसमें उन्नीस प्रकार के वक्ता की व्याख्या की गई है। मूल तो तैतरीय शाखा से उठाया हुआ प्रकरण, जिसमें बीस प्रकार के जल का विवरण है। महाप्रभुजी एकदम सरलता से इस बात को प्रस्थापित करते हैं कि किस वक्ता से कथा सुनो। बहुत-सी शर्त लगाई है महाप्रभुजी ने। लेकिन महाप्रभुजी क्रांतिकारी है। यह वैष्णव संप्रदाय नाम यूझ होता है इसलिए उसको संकीर्ण मत समझना। संकीर्ण कर दे उसके पैर में जल्दी अच्छी राशि रखकर प्रार्थना कर दो कि उसको संकीर्ण न करो कृपया। यह बहुत विशाल है। फलां होना चाहिए, फलां होना चाहिए! इसलिए स्त्री को उपनयन नहीं तो वो कथा नहीं कह सकती आदि-आदि यह सब नियम लगा दिए लेकिन महाप्रभुजी कहते हैं, जिसके घर में सेवा हो और जो कथा रसिक हो, उसने उपनयन संस्कार यदि न किए हो, वो यदि स्त्री हो, पुरुष हो कोई जातिभेद नहीं। वो भगवद्गुणगान गा सकता है। बशर्त गुरुमुखी होना चाहिए।

चार वस्तु गुरुमुखी होनी चाहिए। और चार वस्तु यदि गुरुमुखी नहीं मिली है तो परिणाम तो आएगा। शायद देर से आएगा और हो सकता है परिणाम आए उससे पहले क्या जाने प्रारब्ध पूरा भी हो जाए! चार वस्तु गुरुमुख हो। एक इष्ट ग्रंथ गुरुमुख हो। बाप, एक शास्त्र गुरुमुखी चाहिए। आज किसी ने मुझे यह भी पूछा कि बापू, एक ग्रंथ होना

चाहिए, आप कहते हैं। फिर आपने भी कहा, गुरुजी ने कहा था, 'रामायण' और 'गीता' का पाठ करना। तो यह तो दो हो गया! नहीं, नहीं, यह दो नहीं है। साकेतवासी पंडित रामकिंकरजी महाराज ने कभी कहा था, 'भगवद्गीता' में जो योग है, योगशास्त्र है यह। लेकिन इन योगों का प्रयोग 'रामचरित मानस' में हुआ है। मुझे बड़ा प्यारा लगता है। और इससे आगे आपने मेरे घाट से भी सुना है, 'भगवद्गीता' में जो योग है, उसका प्रयोग 'रामचरित मानस' में है। एक है, दो नहीं है। महाप्रभुजी जो कहते हैं, इष्टग्रंथ का आश्रय करो। उसने तीन ग्रंथों पर प्रस्थानत्रयी लिखा। एक तो 'ब्रह्मसूत्र' पर; 'उपनिषद' पर और 'भगवद्गीता' पर भी। उनका पूरा अणुभास्य जगत के मैदान में है।

तो बाप, चार वस्तु गुरुमुखी हो। एक तो शास्त्र अथवा तो विद्या। शास्त्र और विद्या गुरुमुख हो। दूसरा, मंत्र गुरु मुख हो। अब मंत्र तो व्याप्त है। पंचाक्षर मंत्र ले लो। गायत्री मंत्र लो। चौबीस अक्षर ले लो। 'ॐ नमो अरिहंताणम्' जैनों का लो। 'बुद्धं शरणं गच्छामि' लो। जिसने मंत्र को सिद्ध करके जो खुद शुद्ध हुए हो उससे मंत्र लो। मंत्र को सिद्ध करने के कारण जो नखशिख शुद्ध हो चुका है ऐसा गुरु मंत्रदाता हो सकता है। तीसरा, वचन गुरुमुख होना चाहिए। कोई एक वचन पकड़ ले, कोई एक सूत्र पकड़ ले जीवन में बस, लेकिन हो गुरुमुख। और विश्वास गुरुमुख होना चाहिए। गुरु कह दे इस पर भरोसा रखना, बात खतम! चार जगह पर गुरुमुख की जरूरत है। और गुरु व्यक्ति भी हो सकता है, व्यक्तित्व भी हो सकता है और अस्तित्व भी हो सकता है। कोई सीमा नहीं। एक वृक्ष गुरु हो सकता है। एक चश्मा गुरु हो सकता है।

तो जिस युवक ने पूछा है, उसे कहूं कि कथा सुनते रहो। फिर अपनेआप मन से उठे तो धीरे-धीरे छूट जाए तो अच्छा है। तुम्हारे परिवार के लिए अच्छा है। तुम्हारी तबियत के लिए अच्छा है। हर प्रकार से अच्छा है। और लोग कहते हैं, यह छोड़ो, यह छोड़ो। ऐसा मैं नहीं कहता। मैं तो कहता हूं, कथा पकड़ो तो कथा छुड़वा देगी धीरे-धीरे। मैं अकेला बैठता हूं ना साहब, तो एक-एक घंटे चाय पीता हूं। यहां बैठता हूं तो चार घंटे याद ही नहीं रहती! कथा सब कुछ छुड़वा देती है। यहां आप सब मौन है। कहीं आप रहोगे तो किसी की निंदा करोगे, इर्ष्या करोगे। कथा में रहोगे तो उतनी आपकी निंदा, इर्ष्या छूटेगी, कम होगी। युवान लोग कथा सुन रहे हैं। पढ़े-लिखे लोग कथा सुन रहे हैं। हर क्षेत्र के लोग कथा सुन रहे हैं। क्योंकि कथा बहुत-सी चीज़ें छुड़वा देती है। और कथा का काम सिर्फ़ छुड़वाना नहीं है। कुछ एसी वस्तु पकड़वा देती है कि छोटी वस्तु अपनेआप छूट जाती है। कथा सुनो बस। वो भी आपको रस पड़े तो; आनंद आए तो। आप शराब पीते थे। लेकिन आपको फ़ायदा हुआ है तो सुनो। कथा पीओ। गोपीजनों ने गाया 'भागवत' में -

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमंङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ।।

मैं तलगाजरडा में बैठता हूं। सबको मिलता हूं। एक आदमी हर सप्ताह मेरे पास आता है। और जैसे मैं उसको देखता हूं, सौ रूपिया देता हूं। मैं पूछता हूं, बीडी लेनी है ना? ले, सौ रूपिया, जा! मैं बीडी के सौ रूपिए देता हूं उसको! मेरा कुछ नया दौर है यार! सब उलटी बातें हैं। मेरे सामने बनी घटना। फिर दो सप्ताह में आने लगा! मैं सौ देता था। यह तीन साल से चल रहा है। अब कुछ समय से यह आदमी तीन महिने में आता है। मैंने कहा, भाई साहब, बीमार तो नहीं हो गए? कहां हो आज-कल? क्या बात है? बीडी के पैसे लेने तो आओ! कहे, बापू, अब तीन महिने तक बीडी के बिना रह सकता हूं! यार, प्यार-महोब्बत से दुनिया बदली जाती है, हुकम करके डांटकर, फ़टकार कर कोई सुधरेगा नहीं! सुधर गए होते तो मुझे कथा कहने की जरूरत नहीं रहती! मेरा एक सूत्र है, सुधारने की कोशिश मत करो, सब को स्वीकारने की कोशिश करो। यह सब मेरे हैं इसलिए पहले दिन मैंने कहा कि -

दर्पन तुम्हें जब डराने लगे,
जवानी भी दामन चुराने लगे,
तब तुम मेरे पास आना प्रिये।
मेरा दर खुला है खुला ही रहेगा तुम्हारे लिए।

भगवद्कथा एक खुला द्वार है। तुम पापी हो! तुम यह हो! ऐसे क्यों डांटे जा रहे हो? मैंने परसों ही कहा कि भरतजी का तुलसीदासजी ने मंथन करवाया।

तुलसीदास का हेतु यह नहीं था। राम के अवतार का हेतु यह नहीं था कि रावण को मारना। यद्यपि यह कार्य जरूर है। उसका जो एजेन्डा है उसमें रावण को निर्वाण देना है। लेकिन रावण को मारना प्रधान वस्तु नहीं है। वन में जाकर तपस्वी जीवन जीने का भगवान राम के एजेन्डा में नहीं है। किया जरूर लेकिन एजेन्डा में नहीं है। भगवान वन इसीलिए गए कि भरत का मंथन हो। भरत रूपी संत के भीतर से विश्व को प्रेमरूपी अमृत प्राप्त हो। एक मात्र एजेन्डा है। मैं नहीं कहता हूं, तुलसी कहते हैं -

प्रेम अमिअ मंदरु बिरहु भरत पयोधि गंभीर।
मथी प्रगटे सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर।

भगवान राम का विरह यह मंदराचल है। भरत है समुद्र। भगवान के विरहरूपी पहाड़ से भरत को मथा ताकि विश्व को प्रेमरूपी अमृत मिले। लेकिन निकले चौदह रत्न। मुझे कहने दो, मंथन भरत को शुरू हुआ तो पहला रत्न जो निकला है धर्म। समुद्र मंथन में तो अमृत बाद में ही निकला है। पहले तो ज़हर निकला है। एक प्रकार का मंथन है। हमारे भीतर भी सद्‌गुण और दुर्गुणरूपी सुर और असुर मंथन कर रहे हैं। और अक्सर हमारे सद्‌गुण मार खा जाते हैं। आप पौराणिक कथाएं पढ़िए, सुनिए प्लीज़। युवान भाई-बहन से मैं कहूं कि आप पौराणिक कथा सुने। असुर और देवता लड़ते ही रहते हैं जिंदगीभर और उसमें मार खाते हैं देवता! हमारे भीतर भी सद्‌गुण-अवगुण दोनों है। और मार खाते रहते हैं सद्‌गुण। अवगुण हमारे सद्‌गुण पर हावी हो जाते हैं। कुछ समय के लिए आपको लगेगा कि कथा हारी क्योंकि शराब शुरू हो गया! सद्‌गुण दब गया। आसुरी तत्त्व ने दबाव डाल दिया, लेकिन मंथन चालू रखे, अमृत देर से आएगा। वादा; कथा सुने, कथा गाए और अमृत न मिले तो ईश्वर बेईमान है! कोई सोसायटी नहीं छुड़वा पाएगी। कथा में यह ताकत है। कोई न छुड़वा पाए ऐसी मेरी बात नहीं। बहुत सोसायटी यह काम कर रही है, लेकिन यह सब सुधारने में लगी है। कोई स्वीकारने में नहीं पड़ी है। रामकथा स्वीकार करती है। तुम जैसे हो, आ जाओ। कैसे भी हो। बच्चे को माँ यह नहीं कहती कि पहले तेरे कपड़े साफ़ कर फिर मेरी गोद में आना। क्योंकि माँ को पता है, उसको साफ़ मुझे करना है। आओ। मैं अंजली भी दे दूं एक बार मुंबई में। यह प्रसिद्ध सारंगीवादक मरहूम सूलतानखांसाहब की भैरवी है। जब भी मुलाकात होती थी बस यही भैरवी वो उठाते थे -

आओ, हरि आओ ...

एक बार तो चित्रकूट में आए। हम तीन-चार लोग थे। चित्रकूट में भीड़ नहीं थी और खांसाहब आए। मैंने कहा, साहब, मूड आए तो कुछ बजाए। तो बोले, बापू, बजाऊं, लेकिन हनुमानजी के पास बैठकर बजाऊं। संगीत में कहां भेद है? हिन्दु-मुस्लिम में कहां भेद है साहब! राजेश रेड्डी का एक शे'र उस दिन क्वोट किया गया था -

मैं इन्सान हूं, मैं इन्सान हूं, मैं इन्सान हूं।
हिन्दु और मुस्लिम मुझ पर चाहे जो कर ले।

बड़ी हिम्मतवाला शे'र था। यही धर्म है। साहब, सुलतानखांसाहब हनुमानजी के सामने सारंगी बजा रहे थे। भैरवी बजा रहे थे। उनकी आंखों से सारंगी के तारों पर आंसू गिर रहे थे। गिर रहे थे और चार-पांच लोग हम सब थे। सबकी आंखें नम थी। स्वीकार हो बस। सुधार की बातें बंद करो। मेरी व्यासपीठ का यह मंत्र है सुधारने की बात हमारे पास है ही नहीं। स्वीकार करो, कोई भी आए। धर्म स्वीकार का नाम है। संप्रदाय निषेध लगाएंगे कि इसको ना छुओ! इसको मत बुलाओ! इसके पास मत जाओ! यह आरती न कर सके! यह गर्भ गृह में न जा सके! यहां वल्लभ संप्रदाय का संकेत नहीं है। वल्लभ संप्रदाय तो क्रांतिकारी है। धर्म का अर्थ है स्वीकार करो। भरतजी और वशिष्ठजी सब जा रहे हैं चित्रकूट लेकिन गुहराज एक गरीब आदमी, एक निषाद, एक वंचित, एक पतित आदमी, एक उपेक्षित समाज का आखरी उपेक्षित और वो काल, रामकाल; लेकिन भरतजी रथ में बैठे थे। गुरुदेव भी रथ में बैठे थे और भरतजी को कहा गया कि यह सामने जो खड़ा है, जिसकी आंखें भीगी है, गरीब है, यह यहां का मुखिया है, राम का सखा है। 'रामसखा' शब्द सुनते ही भरतजी रथ से भागे, कूद पड़े! और वो रथ से पीछे-पीछे भाग रहा है, 'नहीं, नहीं, महाराज, मैं अछूत हूं। मैं पापी हूं।' इतने में तो भरत ने अपनी बाहों में निषाद को ले लिया! वशिष्ठजी रथ से नहीं ऊतर पाए! उसको लगा, मैं आचार्य हूं। मैं उसको कैसे छूऊं? और रथ का अर्थ है धर्मरथ। भरत धर्म छोड़ सकता है एक गरीब आदमी के लिए। और वशिष्ठजी नहीं छोड़ पाए! कभी-कभी साहब, चेला ऐसा होता है कि गुरु को दीक्षित करता है! क्रमशः भरत चरित्र देखो, वशिष्ठजी में बहुत सुधार होता जा रहा है।

मुझे महाप्रभुजी बार-बार याद आते हैं। महाप्रभुजी से किसी ने पूछा कि दोष कहां-कहां से प्रकट होते हैं? महाप्रभुजी ने तीन जगह बताइ है। एक, काल के प्रभाव से दोष प्रकट होता है। यह कलिकाल है। कलि का प्रभाव है। कलि के कारण अधिक रूप में दोष प्रकट होते हैं। कभी-कभी काल के कारण दोष पैदा होता है। बहुत गर्मी हो, पसीना प्रकट होता है। बहुत वर्षाकाल है और काल के कारण सोचा नहीं था, इतने कीड़े-मकोड़े पैदा होते हैं! दूसरा, स्वभाव। जन्मजात स्वभाव दोष प्रकट करता है। ध्यान देना, दुनिया के कोई पाश्चात्य मनोविद् न कह सके एसा सूत्र वल्लभ महाप्रभुजी ने कहा है। संकीर्ण क्यों रखते हो आप? महाप्रभुजी को डबरे में क्यों कैद कर दिया है? मैदान में रखो। उसका चिंतन सार्वभौम है। क्यों महाप्रभुजी को एक फ्रेम में बंद कर दिया जा रहा है? इतना विशाल यह अवतार है साहब! यह कोई हमारे जैसा आदमी नहीं है। यह तो इस भू-पट पधारे हम सब का कल्याण करने के लिए। बाप, महाप्रभुजी कहते हैं, दोष की उत्पत्ति काल के कारण होती है। दूसरा, स्वभाव। किसी का स्वभाव ही होता है निंदा करना। कुछ स्वभावगत दोष है। कुछ लोगों का स्वभाव है अहंकार करना। मूढ़ता कई लोगों का एक स्वाभाविक दोष है। यह महाप्रभुजी का दर्शन है, प्रस्तुति व्यासपीठ कर रही है। द्वेष ही करना! दोष की उत्पत्ति का तीसरा स्थान महाप्रभुजी कहते हैं, हरिइच्छा। कभी-कभी भगवान स्वयं चाहते हैं कि उसमें से यह निकले।

हमारे अंदर सद्‌गुण और दुर्गुण, सुर और असुर दोनों की लड़ाई चल रहती है। अक्सर सद्‌गुण मार खाते हैं। विष निकलता है। वारुणी निकलती है। पता नहीं क्या-क्या निकलता है! अमृत तो बाद में निकलता है, लेकिन यह प्रेम प्रकट करने के लिए कथा आवश्यक है। कथा प्रेम का अमृत निकालेगी। वशिष्ठजी धर्म नहीं छोड़ पाए! धर्मरथ में बैठे रहे क्योंकि 'मैं आचार्य! मैं गुरु! एक अछूत को मैं कैसे छूऊं?' और एक धर्मरथ को छोड़कर भरतजी दौड़े। मैं मूल यह बात आपको कह रहा था कि अधिकारी शिष्य गुरु को दीक्षित करता है। क्रमशः अयोध्या के वशिष्ठजी बिलग है, भरद्वाज के पास पहुंचते भरतजी बिलग है। लेकिन चित्रकूट पहुंचते ही वशिष्ठजी सही में विशिष्ट और वरिष्ठ हो चुके हैं। भगवान राम का एजेन्डा मात्र रावण को मारने का नहीं है। एजेन्डा है विश्व में प्रेम को प्रकट करने का। इसलिए भरत की कथा कहते समय जनक जैसे उस ऊंचाई पर पहुंचे हुए महापुरुष को सुनयना को सावधान करना पड़ा कि देवी, यह भरत की कथा सुनने में आप सावधान रहिए, क्योंकि यह परम प्रेमी की कथा है।

भरतरूपी समुद्र को मथने का एजेन्डा था प्रेम, लेकिन पहले निकला धर्म। प्रेमरूपी अमृत आखिर में निकला। भरत ने जो इस रत्न को तराशा, इस हीरे को जो तराशा जिसको पहले दिन मैंने कहा धर्मसार, तुलसी ने कहा धर्मसार। 'रामायण' एक ऐसा मंथन है, आप 'मानस' खोल कर देखिए। धर्म की बात तो रामजी भी करते हैं, हनुमानजी भी करते हैं, भरद्वाज भी करते हैं, वाल्मीकि भी करते हैं, दशरथ भी करते हैं, वशिष्ठजी तो करते ही हैं, लेकिन धर्म की बात तो रावण भी करता है। किसके मुख का धर्म तुम्हारा आदर्श हो? अंगद के सामने रावण ने कहा, मैं अभी तुम्हें मृत्युदंड दे देता हूं, लेकिन धर्म, नीति मैं जानता हूं। दुहाई देता है। मैं धर्म जानता हूं। धर्म की आड़ तो वालि भी लेता है, आपने मुझे क्यों मारा? धर्म की आड़ ले रहा है यह आदमी जिसने जिंदगी भर अधर्म किया! मंथरा धर्म की दुहाई देती है कि मेरे से असत्य सहा नहीं जा रहा, मैं आपको कहने आई हूं इसलिए आप मेरी बात मानो। स्वयं कैकेई जिसकी बुद्धि

सेवा में सावधान रहना बहुत जरूरी है। सेवा में सावधानी रखने का अर्थ यह है कि हम जिसकी सेवा करे उसकी रुचि देखकर करे। उसकी रुचि, उसके स्वभाव में जो न हो वो सेवा न करे, प्लीझ। विवेक से सेवा करे, यह सावधानी का दूसरा लक्षण है। तीसरा सेवा की सावधानी का लक्षण है, स्पर्धामुक्त सेवा। उसने यह सेवा की और हो भी गई तो भी मैं यह सेवा करूं! ऐसी स्पर्धा से सेवा नहीं की जा सकती। स्नेह में सावधान रहना, सेवा में भी सावधान रहना। 'मानस' में तो वहां तक भी लिखा है, किसी का सम्मान करो तो भी सावधान होकर करो।

कुसंग के कारन विपरीत हो गई है वो भी धर्म की दुहाई 'मानस' में लेती है? धर्म की व्याख्या किससे हम कुबूल करे। भरत कहे सो धर्म, कैकेई कहे सो नहीं। मंथरा कहे सो नहीं, रावण कहे सो नहीं, वालि कहे सो नहीं। हम लोग भी तो धर्म की नहीं दुहाई देते? क्योंकि कुछ भी प्रस्थापित करने के लिए धर्म का ही आश्रय लेना पड़ता है। झूठ बोलनेवाला ही कहता है, मैं झूठ नहीं कहता हूं, सच कहता हूं! सच का आश्रय लेना पड़ता है। धर्म की आड़ लेनी ही पड़ती है। जाओगे कहां? निर्णय हमारे जैसा आदमी कहां करे, कैसे करे? तब जाके भरत नजर के सामने आता है। मुझे कहने में कोई झिझक नहीं है कि धर्म की सही व्याख्या वो ही दे सकता है जिसने अपने जीवन में असह्य प्रेमदशा का अनुभव किया हो। धर्म सिखा सकती है राधा। धर्म सिखा सकता है भरत। क्योंकि उसके पास धर्म का सार है, धर्म का अर्क है। कैकेई दशरथजी से कहती है, आपका धर्म है वचन पूरा करना। धर्म के चार चरण है, सत्य, तप, दया, दान। सत्य और तप दूसरा करे। दया और दान हमारे पर हो यही धर्म की कामचलाउ व्याख्या हमने गठ डाली है! कैकेई कहती है, सत्य दशरथजी पाले, तप तुम वन में करो राम, मेरे पर दया करो और राज्य का दान मेरे बेटे को करो। यह कितनी विचित्र धर्म की व्याख्या है! अवश्य, 'रामायण' एक मंथन है। 'रामायण' 'रामायण' है। 'महाभारत' 'महाभारत' है। 'भगवद्गीता' 'भगवद्गीता' है। वेद वेद है। श्री भरतजी की कथा भव बंध विमोचन करती है।

एक प्रश्न, 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष शास्त्र जो समझाए, समझाए। बापू, हम आपको सुनने आए हैं। उसके बारे में आपका क्या कहना है?' स्वागत करता हूं आपके आदर का, आपकी गुणातीत श्रद्धा का। विस्तार न करते हुए मेरा जो निज स्वभाव है वो कहूं। मेरे लिए धर्म सत्य है। मेरे लिए अर्थ प्रेम है। मेरे लिए काम करुणा है और मेरे लिए मोक्ष यह तीनों का समन्वय है। और कोई धर्म की बात नहीं, सत्य ही धर्म है बस। कितनी मात्रा में कर सके। प्रेम ही अर्थ है जीवन का, प्रेम ही अर्थ है। इसीलिए अर्थ मानी पैसा नहीं। यहां अर्थ के तो पंद्रह दोष दिखाए हैं ग्रंथों ने। जीवन का अर्थ क्या है? जीवन का अर्थ है प्रेम करना। जीवन का काम क्या? वो कामवाली बात नहीं, एक ही काम, सब पर करुणा करना। तीनों का समन्वय रूप उसको मेरा घाट मोक्ष कहता है। और भरतजी तो चारों को त्याग देते हैं। उसी से यह आधारित है। जगद्गुरु भी कहते हैं, 'न मोक्षस्याकांक्षा', ऐसा

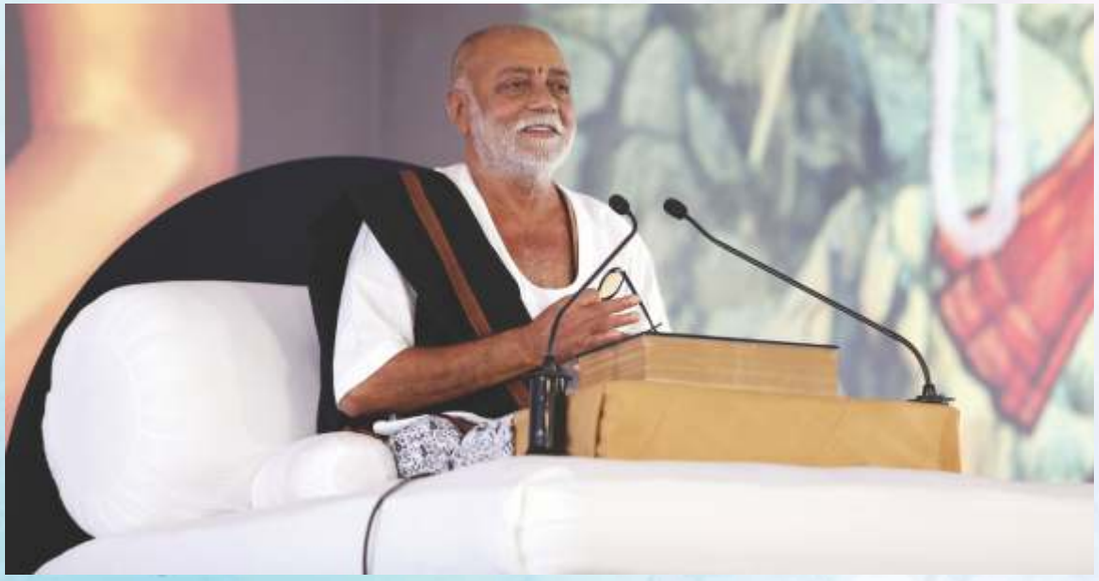

कहकर प्रेम की ओर हमें लिए चलते हैं। सुनैना को सावधान होकर सुनने की बात इस लिए कही कि 'भरत पयोधी गंभीर।' भरत एक महासिंधु है जिससे गोस्वामीजी भगवान राम के प्रेमरूपी अमृत निकाले।

सेवा में सावधान रहना बहुत जरूरी है। सेवा में सावधानी रखने का अर्थ यह है कि सेवा हम जिसकी करे उसकी रुचि देखकर करे। उसकी रुचि, उसके स्वभाव में जो न हो वो सेवा न करे, प्लीझ। आपकी इच्छा है, हम किसी का चरणस्पर्श करे, लेकिन सामनेवाले का स्वभाव चरणस्पर्श करने का नहीं है तो आप यह सेवा ना करे। आपकी इच्छा है, हम किसी श्रेष्ठ की, वडील की सेवा करें, चरण सेवा करें, लेकिन उसके स्वभाव में यह न हो तो प्लीझ, न करे। सेवा की सावधानी का मतलब है सामनेवाले की रुचि को देखकर सेवा करना। विवेक से सेवा करे यह सावधानी का दूसरा लक्षण है। तीसरा सेवा की सावधानी का लक्षण है, स्पर्धामुक्त सेवा। उसने यह सेवा की और हो भी गई तो भी मैं यह सेवा करूं! स्पर्धा से सेवा नहीं की जा सकती। सेवा में श्रीमद् शंकराचार्य ने कहा, रजोगुण वर्ज्य है। यद्यपि सेवा में यह करो, यह करो ये लक्षण रजोगुण के हैं। लेकिन सेवा का मूल स्वभाव रजोगुण मुक्त होनी चाहिए। सेवा का मतलब क्या है? तुलसी ने कहा, 'सेवा धरम कठिन जग जाना।' सेवा विवेक से होनी चाहिए; रजोगुणमुक्त होनी चाहिए; स्पर्धामुक्त होनी चाहिए और रुचि देखकर सेवा होनी चाहिए कि उसके स्वभाव में क्या सेवा है। सेवा विवेक से हो, स्पर्धा से न हो, रजोगुणमुक्त हो और रुचि देखकर हो। यह सेवा सावधान का अर्थ है। सेवा कभी स्पर्धा से नहीं करना, श्रद्धा से करना; सेवा रजोगुणमुक्त करना; सेवा विवेक से करना और चौथा सूत्र, सेवा सामनेवाले की रुचि को देखकर करना कि सामनेवाले का स्वभाव क्या है। तो, तुलसी ने 'विनयपत्रिका' में 'सावधान' शब्द का जो प्रयोग किया वो, मुझे आज एक श्रावक ने रखा है दूसरा -

आप माने स्वामी कै सखा सुभाइ, भाइ, पति,
ते सनेह-सावधान रहत डरत।

भाई, परिवारजन, सेवकगण सब प्रभु से स्नेह करते हैं, लेकिन सब प्रभु से थोड़े-थोड़े डरे-डरे रहते हैं। स्नेह में सावधान रहना, सेवा में भी सावधान रहना। स्नेह एक अवस्था है। प्रेम तो आखिरी अवस्था है, लेकिन स्नेह का एक पडाव है, एक बिंदु है। 'मानस' में तो वहां तक भी लिखा किसी का सम्मान करो तो भी सावधान होकर करो। ऐसा तुलसी ने लिखा है। जब चित्रकूट में पूरा नगर बसा है अयोध्या का और अवधवासी लोग रोज प्रार्थना करते हैं, ऐसा मांगते हैं कि राम राजा बने, जानकी रानी बने, अयोध्या राजधानी बने। तब परमात्मा सबका सावधान होकर सम्मान करते हैं। किसी का सम्मान करना तभी भी सावधान होकर करना, पागल होकर नहीं।

कुछ समय बचा है उसमें कथा का क्रम लूं। कल रामजनम का संक्षिप्त गायन हुआ। राम का प्राकट्य हुआ फिर माँ कैकेई ने एक पुत्र को जन्म दिया और सुमित्रा ने दो पुत्रों को जन्म दिया। चार पुत्रों की प्राप्ति में अयोध्या का आनंद कई गुना बढ़ गया। दिन बीतने लगे। 'मानस'कार कहते हैं, मानो एक महिने का दिन हो गया! रात हुई ही नहीं! अब प्रकृति के नियम अनुसार रात होती होगी, दिन आता होगा, लेकिन शायद उत्साह में लोग इतने भावमग्न हो गए होंगे कि तीस दिन बीत गए, पता ही नहीं लगा! हो सकता है। हमारा तो अनुभव है, कथा में दिन कैसे बीत जाते हैं तो पता ही नहीं लगता! तो, कथानायक राम स्वयं प्रकट हुए हो और किसी को भान न रहा हो तो मुझे नहीं लगता कोई आश्चर्य की बात है। सब भाव-समाधि में रहे होंगे। अथवा तो एक संत ने बताया था, एक महिने का दिन हो गया मतलब रात नहीं हुई ऐसी बात नहीं, लेकिन राम जब प्रकट हुए होते हैं किसी के जीवन की अयोध्या में, किसी के घर की अयोध्या में प्रकट हो जाए तो फिर अंधेरा होता ही नहीं, उजाला ही रहता है। प्रकाश ही प्रकाश रहता है, तमस नहीं रहता।

चार भाईयों को पा कर अयोध्या धन्य हुई है। चोरों का नामकरण करने का समय आया। सबसे पहले वशिष्ठजी ने कौशल्यानंदन का नाम रखते हुए कहा कि राजन्, जिसका नाम लेने से विश्व को विश्राम मिलेगा, जो स्वयं अभिराम है इस बालक का नाम मैं राम रखता हूं। यह तो नामकरण हुआ, लेकिन इसका आंतरिक अर्थ क्या है? आंतरिक अर्थ यह है कि जीवन में जिसके नाम से आपको आराम मिले, विश्राम मिले, शांति मिले, तुम्हारे लिए वो राम है। त्रेतायुग की प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं। राम केवल रघुकुल में ही प्रकट हो यह कोई जरूरी

नहीं है। जिसके पास जाने से आराम मिले, क्या वो हमारा राम नहीं? जिसके पास जाने से उद्वेग की सभी तरंगें शमित हो जाए, क्या वो हमारा राम नहीं? जिसके पास जाने से शांति मिले, क्या वो हमारा राम नहीं? राम तो अनेक रूप रूपाय है, अमित रूप है राम के। राम के समान वर्ण, राम के समान शक्लो सूरत, राम के समान शील और स्वभाव, कैकेयी के बेटे में जो था इस बालक का नाम रखते हुए वशिष्ठजी ने कहा, राजन्, इस बालक का नाम लेने से विश्व का भरणपोषण होगा इसलिए इसका नाम भरत रखता हूं। जो किसी का शोषण न करे, सबका पोषण करे वो भरत। जो हमें पुष्टि दे, तुष्टि दे, समाज में कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए; अखंड ऐसी जिसकी वृत्ति हो; जो हमारा शोषण कभी न करता हो, हमारा पोषण ही उसका साध्य हो ऐसे व्यक्ति को भरत के रूप में देखना।

सुमित्रा के दो पुत्र, उसमें से जो आखिरी पुत्र है उसका नामकरण पहले किया। वशिष्ठजी ने कहा, यह जो बालक है उसके नाम से शत्रु की बुद्धि का नाश होगा, शत्रुता मिटेगी, शत्रु नहीं। दुश्मनी मिटेगी, दुश्मन नहीं। इसलिए इस बालक का नाम मैं शत्रुघ्न रखता हूं। जिसकी उपस्थिति में हमारी वैरवृत्ति खतम हो जाए तो उसको शत्रुघ्न समझना। जिसके संवाद से, जिसके दो बोल से अदालतों से केस निकल जाए और आदमी संघर्ष से मुक्त हो जाए, दुश्मनी खत्म हो जाए तो समझ लेना वो शत्रुघ्न है। वशिष्ठजी ने कहा, जिसमें सब लक्षण समाहित है, राम का जो अत्यंत प्रिय है, शेष नारायण के रूप में समस्त विश्व का जो आधार है, परम उदार है, उसका नाम हम लक्ष्मण रखते हैं। तो बाप, जो परम उदार है, हमारा धारक है, सब लक्षण से संपन्न है और रामप्रिय है ऐसी कोई भी व्यक्ति स्त्री हो, पुरुष हो, बालक हो, बूढ़ा हो कोई भी मिल जाए जीवन में तो वो लक्ष्मण है। त्रेतायुग में खोजने मत जाइएगा, वर्तमान में देखिए। जिसके नाम से आराम मिले वो राम। जो हमारा भरण-पोषण करे, शोषण न करे वो भरत। जो हमारी दुश्मनी की नींव को खतम कर दे वो शत्रुघ्न। जो हमें आधार दे, परम उदार हो वो लक्ष्मण। वशिष्ठजी ने चारों पुत्रों का नाम दिया और कह दिया, राजन्, यह तुम्हारे पुत्र है ही लेकिन यह वेद के सूत्र है। यह वेद का सार है तुम्हारे पुत्र। बहुत बड़ा उत्सव हुआ है। फिर चूड़ाकरण संस्कार होता है। फिर यज्ञोपवित संस्कार होता है। फिर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, वशिष्ठजी के यहां विद्या प्राप्त करने गये आदि-आदि कथाएं लगी हुई है उसकी संक्षेप में चर्चा मूल बात को बरकरार रखते हुए आगे-आगे दिनों में हम करेंगे।

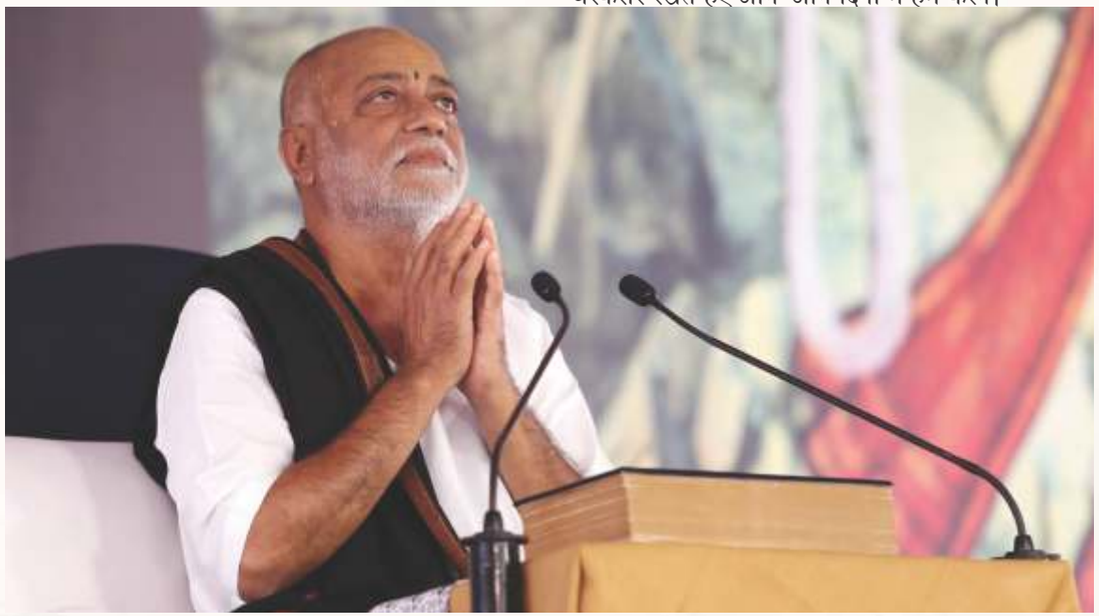

साधु हर चीज़ में सावधान रहता है

'मानस' अंतर्गत 'सावधान' शब्दब्रह्म को चुनकर हम कुछ डान्सिंग टोक अथवा तो सिंगिंग टोक कर रहे हैं। यह कोई मेरा प्रवचन नहीं है। या तो मेरा डान्सिंग टोक है या बहुधा मेरा सिंगिंग टोक है। कुछ और नाचें, कुछ और गाएं। नाचने का मेरा मतलब 'आत्मा नर्तकः।' इसका मतलब होता है, हे साधु, तेरी आत्मा ही नर्तक है। तो सावधान होकर सुनिए। कल 'विनयपत्रिका' की कुछ बात हो रही थी कि तुलसी ने सेवा में सावधान रहो, ऐसी बात कही। बड़ा आदमी छोटे आदमी से जो प्यार करता है उसको स्नेह कहते हैं। स्नेह में सावधान रहो। 'मानस' में ऐसी भी बात कही है कि किसी का सम्मान हो तब भी सावधान रहो। 'मानस'कार कहते हैं कि युद्ध में भी सावधान रहो। 'मानस'कार कहते हैं, साधुता में भी सावधान रहो। यद्यपि 'रामचरित मानस' में लिखा नहीं फिर भी मैं एक सावधानी जोड़ूं, शादी में भी सावधान रहो क्योंकि मंडप में कहा जाता है कि 'वर-कन्या सावधान!' कन्या-वर सावधान। कन्या-पिता सावधान। वर-माता सावधान। यह चार फ़ेरे हैं सावधान, बाप!

मुखर आदमी का आदर्श कभी मौनी नहीं बन सकता। यद्यपि मैं कोई आदर्शवादी नहीं हूं। अल्लाह जाने, यह सिद्धांत है, आदर्श है, खबर नहीं! फिर भी जीवन के अमुक पड़ाव होते हैं। सीढ़ियां होती है। पायदान होते हैं। वहां कदम रखते साधक को क्रमशः कोई लक्ष्य रखना पड़ता है। लेकिन कभी-कभी हम लक्ष्य चुनने में सावधान नहीं होते। लक्ष्य में असावधानी जब बर्ती जाती है तब न तो कृष्ण मिलता है, न तो कृष्णा मिलती है। सावधान! यहां बार-बार 'सावधान' शब्द की आवृत्ति हो रही है। यह बंधन के रूप में नहीं है। अच्छी तरह हम नाच सके, अच्छी तरह हम जीवन को एंजोय कर सके, अच्छी तरह हम कंठ से गा सके, इसलिए 'सावधान' शब्द यहां गाने का शृंगार है। 'सावधान' शब्द यहां नृत्य की घुंघरू है, बेड़ियां नहीं है। कोई गलत अर्थ न करे। मेरा घाट सबको स्वतंत्र करना चाहता है। जो ओलरेडी है, हम स्वतंत्र है। हमें बंदी बनाया गया है सिद्धांतों के जरिये, आदर्शों जरिये, तथाकथित कुछ बातों के जरिये। यदि हम बंधन में रहना चाहते हैं तो भी कृपया एक ही बंधन कुबूल करें या तो बुद्धपुरुष का या परमतत्त्व का। बाकी सब बेड़ियां है। 'सावधान' शब्द का प्लीज़, संकीर्ण अर्थ मत करिएगा। लेकिन कुछ पायदान होते हैं ऊर्ध्वगमन के, ऊर्ध्वयात्रा के। उसमें कुछ मुकाम आता है जहां रुकना होता है। थोड़ा विश्राम करके आगे की यात्रा में चलना होता है। इसलिए जब 'आदर्श' शब्द का प्रयोग कर रहा हूं तब सावधान!

अत्यंत बोलनेवाले आदमी का आदर्श कभी मौनी नहीं हो सकता, क्योंकि अत्यंत बोलनेवाला मौन रहनेवाले की आलोचना करेगा कि यह क्या चुप बैठा है! न कुछ बोलता है, न कुछ! यह क्या है? यह तो मूढ़, गंवार, निपट, कुछ विकृत-सा लगता है! मैल नहीं बैठता। और मौन आदमी का आदर्श कभी मुखर नहीं होता। ब्रह्मचारी का आदर्श वानप्रस्थी नहीं बन सकता। कतई नहीं। और वानप्रस्थी का आदर्श ब्रह्मचारी नहीं बन सकता। गृहस्थ का आदर्श कभी संन्यासी नहीं बन सकता। संन्यासी का आदर्श कभी गृहस्थ नहीं बन सकता।

क्यों भरत की कथा सावधानी से सुनने को सुनयना को कहा गया? सुनयना सुमुखी है। एक अच्छा दृष्टिकोण रखनेवाली सुलोचनी करीब-करीब बुद्धता को पहुंची हुई। अरे, पहुंची नहीं तो बुद्ध नर को पाई हुई है। उसका पति बुद्धता को उपलब्ध है। बुद्धता की छाया है सुनयना। इसीलिए उसको जनक महिपति कहते हैं, सुनयना, भरत की कथा आप सावधानी से सुनिए। क्या विश्व में कोई ऐसा आदमी हो सकता है कि सबका आदर्श हो? क्या कोई ऐसा मानुष मिलता है कि 'ओल इन वन' हो। एक में सब कुछ दिखाई दे? कभी-कभी हमारी प्रतीति होती है कि किसी एक बुद्धत्व प्राप्त व्यक्ति में ठाकुर रामकृष्ण दिखता है। कभी मीरां दिखती है। कभी मेहता नरसिंह दिखता है। कभी ज्ञानदेव, कभी शुक, कभी तुलसी। यह करीब-करीब असंभव और दुर्लभ तत्त्व है। लेकिन कोई-कोई होता है, जिसमें हमें सब

नज़र आए। कौन है ऐसा? 'तुझमें रब दिखता है, यारा मैं क्या करूं?' मज़बूरी है! प्रमाण 'रामचरित मानस।' ध्यान दीजिएगा मेरे भाई-बहन, भरत की कथा आपको भवबंधन से मुक्त कर देगी यदि आप सावधानी से ना सुनो तो भी। भरतकथा भवबंधन से मुक्त कर देती है अवश्य। यदि हमें मुक्ति में रुचि नहीं है और सुनी, थोड़ी असावधानी हो जाएगी। भरतकथा सुनने से बंधन और मुक्ति के द्वैत समाप्त हो जाएंगे।

भरतजी राम के दर्शन के लिए असह्य प्रेम की अवस्था में रोते हुए निकले हैं। कभी किसी के कंधे पर सिर हो, कभी किसी को लिपट जाते हैं। बोलने में भरत सावधान नहीं रहते हैं, 'बिहबल बचन प्रेम बस बोलाई।' विह्वल की तरह बोलते हैं। यह तो परमहंस है, लेकिन विंह्वल, व्याकुल जा रहा है और जब वो भरत पूरे समाज के साथ महर्षि भरद्वाजजी के आश्रम में पहुंचते हैं तो क्या घटना घटती है? 'मानस' की चौपाईयां है -

प्रमुदित तीरथराज निवासी।
बैखानस बटु गृही उदासी।।

उस काल में, त्रेतायुगीन समय में नेक्स्ट टु अयोध्या, इलाहाबाद है। अयोध्या के बाद बड़ी नगरी इलाहाबाद है, प्रयाग है। यूं कहने दो, अयोध्या से भी बड़ी नगरी है। क्योंकि अवध में तो एक नदी बहती है, यहां तीन नदियां बहती है। बड़ा नगर है, बड़ा तीरथ है। केमेरा लेकर पीछे-पीछे फिर रहे हैं गोस्वामीजी! भरत का विडियो ले रहे हैं! आनेवाले भारत को, महाभारत को, त्रिभुवन को, विश्व को एक असह्य प्रेमी की भावदशा का दर्शन कराने के लिए राजापुर का आदमी विडियो रेकोर्डिंग कर रहा है! क्या देखा उसने कि तीरथराज के सभी लोग प्रमुदित है, प्रसन्नता से भर गए हैं। अब इनमें कौन-कौन है? गोस्वामीजी वर्गीकरण करते हैं। कविता तो देखो! क्या छंद, प्रबंध है तुलसी का! चार वर्ग दिखाए। बैखानस, वानप्रस्थी। बटु, ब्रह्मचारी। गृही, गृहस्थ। और उदासी मानी संन्यासी। एक भरत में सबको अपना चेहरा दिखता है। एक दर्पण बन गया विश्व का भरत। हम कैसे हैं, देखो भरत दर्पण में। वानप्रस्थियों को भरतजी वानप्रस्थ शिरोमणि दिखाई दिए। ब्रह्मचारियों को ब्रह्मचारी दिखाई दिए, गृहस्थी को गृहस्थ दिखाई दिए और उदासीनों को भरत संन्यासी दिखाई दिए। सब स्तंभित है! फिर क्या हुआ?

कहहिं परसपर मिलि दस पांचा।
भरत सनेहु सीलु सुचि सांचा।

मेरे गोस्वामीजी क्या कहते हैं, भरत का शील और भरत का स्नेह सच्चा है। ऐसा बोलनेवाले कौन है? ऐसे गैरों के वचन नहीं, कोई वानप्रस्थियों के, कोई ब्रह्मचारियों के, तपस्वियों के, कोई गृहस्थाश्रमियों के और संन्यासियों के वचन है। भरत का शील और स्नेह सच्चा है।

मुझे पूछा गया, 'सत्य का रंग कौन-सा है? प्रेम का रंग क्या है? और करुणा का रंग क्या है?' सुनो, सत्य का रंग श्वेत है। धवलता ही सत्य का कलर है, यदि उसको कलर देना चाहे तो। गंगा सत्य है। करुणा यमुना है। मेरी दृष्टि में यह त्रिवेणी है। सरस्वती तो लुप्त है, दिखती नहीं है। गंगा श्वेत है, सत्य है। भरत प्रेममूर्ति है। प्रेम का रंग गुलाबी अथवा लाल कह दो। मुझे कोई आपत्ति नहीं है। और याद रखना मेरे भाई-बहन, करुणा का रंग श्याम होता है, ब्लेक। करुणा छाई रहती है आसमान की तरह और आसमान का कलर ब्लेक है। हमारा प्रेम यदि प्रेम है तो कोई बात नहीं लेकिन प्रेम के नाम पर कुछ और है तो हमारा प्रेम पक्षपाती होता है। हमारा सत्य तैलधारावत् नहीं होता। कहीं न कहीं कोई असत्य का दाग लग जाता है, श्वेत नहीं रहता। सत्य का केनवास श्वेत है, प्रेम का केनवास लाल है और करुणा का केनवास श्याम है। यमुनाजी क्या है? करुणा की मूर्ति है, श्याम है। गंगाजी श्वेत है और भरत रो-रो कर लाल हो गए हैं। यह प्रेम का लक्षण है, प्रेम का रंग है। तो भरत का स्नेह और शील सच्चा है। क्यों महाराज भरत चित्रकूट की रात्रि में सुनयनी, सुमुखी सुनयना को सावधान होकर सुनने को कहते हैं? क्योंकि भरत में चारों के चारों दिखते हैं। भरत ब्रह्मचारी है, यस। रामविवाह के बाद भरत ज्यादा अवध में नहीं रहे। ननीहाल चले गए। राम का वनवास हुआ, पिता की मृत्यु हुई तब भरत ननीहाल से बुलवाए गए। कहना पड़ेगा, यह बटु है। ब्याहा हुआ है फिर भी बटु है। भरतजी ने ब्याह किया है इसीलिए गृहस्थ है। वन की ओर प्रस्थान कर रहे हैं इसीलिए वानप्रस्थी है। और भरत जैसा त्याग किसका? इसीलिए भरत संन्यासी है। अवस्था के अनुसार हमारी परंपरा ने चौथी अवस्था में यदि संन्यासी की बात कही है लेकिन यह कलियुग है। सब को संन्यासी होने की जरूरत नही हैं। बिन मांगी सीख दे रहा हूं। घर में रहकर संन्यास पैदा करो, जैसे भरत ने किया। ओशो कहा करते थे, मांगना नहीं है, जागना है। वसीम बरैलवीसाहब का एक शे'र है, बड़ा प्यारा शे'र-

वो जहां भी रहेगा रोशनी लुटायेगा।
चरागों को अपना कोई मकां नहीं होता।

चरागों को अपना मठ, अपना आश्रम नहीं होता। खुश्बू खिबेर देता है। भरत भवन में रहकर संन्यासी रहे। तो भरत ननीहाल चले गए। राम के वनवास के बाद वन चले और राम के वन जाने के बाद पूरे अवध ने एक व्रत ले लिया था। कहते हैं, राम के वनवास के बाद अयोध्या में किसी की मृत्यु भी नहीं हुई है और किसीका जन्म भी नहीं हुआ है। सब संयम बरत रहे हैं। जैसे चकवा-चकवी रात्रि में बिलग रहते हैं, ऐसे प्रत्येक व्यक्ति बटु हो गए थे श्री अवध में।

भरत बटु है। भरत गृहस्थ है। गृहस्थ आदमी क्या करता है? मैं फिर महाप्रभुजी को याद करूं, 'उदासीन स्वयं कूर्यात प्रतिकूले गृहं त्यजेत्।' जो गृहस्थ होता है, घर का मुखिया होता है। परिवारवाले कुछ प्रार्थना न कर सके, उसकी रुचि न हो तो सब के लिए माला करता है, मेरे बेटे का अच्छा हो, मेरी बेटी का अच्छा हो; मेरी पत्नी प्रसन्न रहे, मेरा भाई आनंद में रहे, मेरा पड़ोसी आनंद में रहे। भरत ननीहाल गए, कहीं भी गए रोज रुद्राभिषेक करते हैं। और मांगते क्या है? मेरी अवध में सब कुशल रहे। यह गृहस्थ धर्म है बाप! यह सब करना चाहिए।

भरत ने रो कर गुरु को कहा, आप मुझे अवध भेज रहे हैं! मैं क्या करूं? मैं पद का आदमी नहीं हूं, मैं सत्ता का आदमी नहीं हूं, मैं पागल हो जाऊंगा। मैं कैसे सब कर पाऊंगा? तब रामजी ने कहा, भरत, चिंता करने की तुझे कोई जरूरत नहीं भाई। हमारे माथे पर हमारा गुरु है। यह गौरीशंकर शिखर है भरोसे का। हम जीव है। स्वाभाविक है बाप, डामाडौल हो ही सकते हैं। हम कृत्य देखते हैं, वचन ठीक से नहीं सुनते, सोचिएगा। या तो गुरु पर सब छोड़ दिया जाए या गुरु को छोड़ दिया जाए। श्री भरतजी को राम ने यही समझाया था। गुरु में तीनों रंग होता है श्वेत, ब्लेक और रेड-पिन्क। बुद्धपुरुष तीनों रंगों से सत्य, प्रेम, करुणा से भरा होता है। काश, हमें कोई ऐसा बुद्धपुरुष मिल जाए जिसमें गृहस्थाश्रय भी दिखाई दे, ब्रह्मचर्याश्रम, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम भी दिखाई दे।

तो श्री भरतजी ब्रह्मचारी तो है ही शादीशुदा होते हुए। भरतजी गृहस्थ है। जब वन में जाने की बात आई कि राम को मनाने हम वन में जाए। भरतजी की बात सब ने मान ली कि ठीक है निर्णय जो हो चित्रकूट में हो, लेकिन इस बहाने कम से कम हरि का दर्शन तो हो, बाकी जो हो! जब जाने की बात आई तब कुछ लोगों ने सचिवों ने भरतजी से बात की, हम जा रहे हैं, अयोध्या की व्यवस्था का क्या? अब देखो, गृहस्थ जीवन। भरतजी ने कोई भी क्षेत्र नहीं छोड़ा जहां भरतजी ने अयोध्या से चित्रकूट जाने से पहले रक्षक और संचालक नियुक्त न किए हो। यह गृहस्थधर्म है। जीवन के कोई भी ताले लेकर 'मानस' के भवन में जाओ, कुंजी मिलेगी। मेरी छोटी समझ में मैं वहां पहुंचा हूं कि दुनिया में कोई भी समस्या ऐसी नहीं कि जिसमें 'मानस' ने समाधान प्रस्तुत न किया हो। मेरे लिए 'मानस' पर्याप्त है। सब समृद्धि मेरे राम की है, उसकी व्यवस्था किए बिना जो मैं चलूं तो भरत एक और पंक्ति गाते हैं वहां-

तौ परिनाम न मोरि भलाई।
पाप सिरोमनि सांइँ दोहाई।।

तो परिणाम में मेरी कभी भलाई नहीं होगी। क्योंकि मेरा नहीं है, मुझे सोंपा गया है। दुगुनी सावधानी से मुझे उसको संभालना पड़ेगा। दो शब्द साधु के मुख से निकलते हैं। आदि, मध्य कैसा भी हो कुछ ऐसे कर्म करे कि परिणाम अच्छा हो। आदि ठीक न हो तो कोई चिंता मत करना। मध्य मानी जुवानी। जुवानी भी यदि ठीक न रहे तो, देश की जुवानी, आज की जुवानी को गालियां

नहीं देनी चाहिए धर्माचारियों को। यह मध्य है, उसका चूक होने की संभावना है। तेरे में साधुता है तो प्यार कर। बुरों से प्यार कर, अच्छों से तो पूरी दुनिया करती है। अच्छों से तो सब प्रेम करेंगे, सब कुबुल करेंगे। बुरों के लिए क्या? जिसके पास इतना प्यार है, करुणा है तो वो दुर्जन से दुर्जन व्यक्ति से महोब्बत करेगा। करुणा और प्यार चुनाव थोड़ा करता है? शादी में ठीक है ,चुनाव करो कि देखो, बाकी प्रेम जगत में कहां चुनाव करे? करुणा में कौन चुनाव करे? बुद्धपुरुष में जब अत्यंत अधिक सब कुछ भर जाता है फिर उसकी मजबूरी होती है। वो पात्र ढूंढता है। पहले तो जब तक वो एक अवस्था तक होता है ना तो पात्रता पूछते हैं। गुरु क्या करता है? अपात्र को पात्र बना देता है। करुणा क्या करती है? अंगुलीमाल को बुद्ध बना देती है। करुणा क्या करती है? साधु बना देती है। 'मानस' में लिखा है, 'करहु सद्य तेहि साधु समाना।' 'भगवद्गीता' में लिखा है, 'क्षिप्रम् भवति धर्मात्मा।' मध्यम कक्षा जो है, युवानी जो है उसमें तो थोड़ी चूक होती है। किसने युवानी में चूक नहीं की है?

मुझे कल ही एक भाई पूछ रहे थे उस भाई ने कहा, मैंने शराब छोड दी थी फिर शुरू कर दी और आपने कहा, शुरू रखो। हद है! यह क्या निवेदन? आपका निवेदन तो टेप हो गया है! हां, तो मैंने कहा, मैं थोड़ा निवेदन बदलनेवाला हूं? लेकिन मैंने जो कहा वो सुनिएगा। कथा मत छोड़ो। मैं नहीं छुड़ा पाऊंगा तुम्हारी शराब, कथा छुड़ा देंगी। क्योंकि अमृत पीने के बाद कड़वा कौन पीएगा?

या तो कुबूल कर मेरी कमज़ोरियों के साथ,
या छोड़ दे मुझे मेरी तन्हाइयों के साथ।

- दीक्षित दनकौरी

जुवानी में आदमी थोड़ा बिगड़े तो उसकी निंदा न की जाए। यह मौसम है। लाख रोके व्यासपीठें लेकिन तो भी यह रुकनेवाली बात थोड़ी है? असत्य में से ही सत्य में जाया जा सकता है। हम उपनिषदों के अर्थ अपने ढंग से करते हैं। लेकिन स्पष्ट है, 'असतो मा सद् गमय।' अंधेरे का भटकाव ही उजाले को निमंत्रण है। युवानी में हो सकती है भूल।

लाज़िम नहीं कि हर कोई हो कामयाब ही,
जीना भी सीख लीजिए नाकामियों के साथ।

मध्य भाग जो जीवन का है उसमें चूकें होती है। जाओ बरसाना, राधा पात्र बना देगी, फिर यशोदा उसमें गोरस डाल देगी। कोई शरण ऐसी ली जाए कि हम कुपात्र को पात्र बना दें। आदि तो गंदा होता है। मध्य भी एक उम्र ऐसी है थोड़ी गंदगी आ जाती है लेकिन सवाल है परिणाम का। श्री भरतजी कहते हैं, यदि मैं गृहस्थ जीवन का निर्वहण न करूं और सब संपत्ति रघुवर की है उसको जतन किए बिना जाऊं तो परिणाम में मेरा भला नहीं होगा। मेरी कभी भलाई नहीं होगी और मेरे सांए कि दुहाई, मैं दुनिया में पाप शिरोमणि माना जाऊंगा। तो भरत है ब्रह्मचारी। भरत है सद्गृहस्थ। भरत है वानप्रस्थ। घर में रहकर भरत वानप्रस्थी है।

महाराज जनक सुनयनाजी से कहते हैं, देवी, भरत की कथा सावधान होकर सुनिए। भरत कथा बहुत सावधानी से ही सुननी पड़ती है वर्ना बहुत चूक हो सकती है। पूरी दुनिया में किसी के बारे में चूक करना इतना बड़ा अपराध नहीं है, जितना किसी संत के बारे में चूक करना। सावधान होकर सुनने का मतलब बंधन नहीं। कहीं असावधानी ही हमारे बंधन का कारण न बन जाए। इसीलिए 'सावधान' शब्द बार-बार प्रयुक्त किया जा रहा है।

कुछ आगे बढ़ूं। कल मैंने संकेत किया था, तुलसीजी ने कहा-

ऊँच नीच मध्यम नर नारी।
लहहिं दरसु निज निज अनुहारी।।

चित्रकूट में उंच, नीच, मध्यम, दर्जे के स्त्री-पुरुष थे। अपनी-अपनी मति, रुचि के अनुसार वो राम का दर्शन कर रहे हैं। उसी समय कहते हैं, भगवान राम सावधान होकर सबका सम्मान करते हैं। और सब लोग कृपानिधान की सराहना कर रहे हैं कि सम्मान करने में भी कितना शीलपूर्ण सावधान है ठाकुर! सम्मान में सावधान। सम्मान लेने में भी, देने में भी। चाहे नर हो, चाहे नारी हो। सीधी-सादी बात कहूं तो जो उच्च है, समाज में श्रेष्ठ है, वरिष्ठ है, विशिष्ठ है, उसका सम्मान शास्त्रीय तौर पर दंडवत् से किया जाता है। जो लोग राम के पास सुबह-सुबह में आए उनमें मुनिगण भी थे, ऋषिगण भी थे। भगवान उसका सम्मान करते हैं तो दंडवत् से करते हैं। उत्तम पुरुष का सम्मान शास्त्रीय रूप से, यदि स्थूल रूप से दंडवत् न करो तो दीप दंडवत् करे। अब मेरे पास प्रश्न आता है कि माता दंडवत् कर सकती है कि नहीं? मेरा निज अभिप्राय है, बहनों को दंडवत् नहीं करना चाहिए। बहनों को दंडवत् नहीं करना चाहिए। बहनों की ऊर्जा शरीर के अमुक भागों में विशेष होती है और उस विशेष अंग को धरती पर छूने से वो ऊर्जा धरती के अंदर चली जाती है। कहीं छूट दी हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। दंडवत् बहनों के लिए ठीक नहीं, बहनों की एक मर्यादा होनी चाहिए। उत्तम को दंडवत्। मध्य का सम्मान गले लगाने से होता है। छोटे का सम्मान उसके सिर पर हाथ घुमाकर या उसकी पीठ पर हाथ घुमाकर किया जाता है। सबके सम्मान में राम सावधान बर्ते है। मुनिगण को दंडवत् किया है। जो मध्य थे उनको बहुत हृदय के भाव से प्रभु मिले हैं और जो छोटे हैं उसको प्रभु दुलार से सिर पर हाथ घूमा रहे हैं, पीठ पर हाथ घूमा रहे हैं। लेकिन तुलसी ने कहा, नर-नारी दोनों है वहां। अब नर को सम्मान स्वीकारने में कौन-सी सावधानी रखनी चाहिए और बहन लोगों को सम्मान स्वीकारने में कौन-सी सावधानी रखनी चाहिए? यह भी थोड़ा सुन लिया जाए। मैं जब पढ़ा हूं तब ऐसी डिटेल में पढ़ा हूं। कोई बड़ा हमारा सम्मान करे तब पुरुष को चाहिए वो जितना उपर उठ कर हमारा सम्मान करे हम उतना ही विनम्र बनकर उसका सम्मान कुबूल करे। और निज मत है कुछ माताएं, नारी कोई गले में हार पहनाए तो वहां माला एक ही बार पहनी जाती है और फिर जनम-जनम काफ़ी है, जिसको वरमाला कहते हैं।

मैं देख रहा था एक पारितोषिक वितरण में, आज की जो युवानी है वो जिस कला में आगे बढ़ती है ना उतनी ही विनम्र होती जा रही है। मेरे देश के लिए, मेरी प्यारी पृथ्वी के लिए शगुन है। समवयस्क मध्यम और सम्मान करे तो उसी समय उसका उतना ही आदर, सम्मान करते हुए समवयस्क के सामने वो हाथ पकड़े तो वो हाथ पकड़े, यह मध्यम के सम्मान का स्वीकार और जो छोटे हैं वो तो कहेंगे, नहीं, नहीं, ऐसे नहीं, सिर पर

हाथ रखो। ऊंच-नीच, मध्य, नर-नारी सब अपनी रुचि के अनुसार भगवान का दर्शन कर रहे हैं। सावधान! भगवान राघवेन्द्र उसका सम्मान करते हैं। भगवान के इस शील को देखकर कृपानिधान की सब सराहना कर रहे हैं। युद्ध में भी सावधानी होनी चाहिए। जब भगवान 'अरण्यकांड' में खर-दूषण के सामने आते हैं और त्रिसिरा आदि ने जब जाना कि सबल आराति है तब राम पर एकदम शस्त्रों की वर्षा करने लगे और वहां गोस्वामीजी 'सावधान' शब्द का प्रयोग करते हैं तब कहते हैं, युद्ध में सावधानी जरूरी है। राष्ट्रीय सरहदों पर सावधानी जरूरी है। युद्ध के क्षेत्र में जो सावधान नहीं वो मार खा सकता है। बुद्धत्व में तो सावधानी जरूरी है ही लेकिन युद्धत्व में भी सावधानी जरूरी है, ऐसा गोस्वामीजी का यहां मत प्रतिपादित होता है। संक्षेप में आगे बढ़ें -

सावधान मानद मदहीना।
धीर धर्म गति परम प्रबीना।।

'अरण्यकांड' में जानकी की खोज करते-करते राम-लक्ष्मण पंपासरोवर पहुंचते हैं। वहां नारदजी आते हैं और नारदजी की मन की बातों का समाधान किया जाता है और आखिर में नारदजी भगवान की स्तुति करते हैं और भगवान से एक प्रश्न पूछते हैं। पंपा सर के तट पर भगवान सुख आसीन बैठे हैं। नारद ने जिज्ञासा की है कि महाराज, आप की दृष्टि में संत के लक्षण क्या है? शास्त्र से नहीं, आपसे पूछना चाहता हूं। आप किसको संत कहते हैं? फिर आप जानते हैं, पूरा प्रकरण संत के लक्षणों को चुन-चुनकर वहां चर्चा की गई। वहां यह पंक्ति आई है। साधु वो है जिसका एक लक्षण, जीवन की प्रत्येक क्षण में जो सावधान रहता है वो साधु।

नथी मफतमां मळतां, एनां मूल चूकववां पडतां।
साधु ने संतपणा मनवा, नथी मफतमां मळतां।

बहुत कठिन है बाप! आदमी की सावधानी अखंड नहीं रह सकती।

यदि यहां साधु के लक्षण के बारे में 'सावधान' शब्द की परिभाषा की जाए तो, साधु मानी वेश का नहीं, वृत्ति का। ये निवेदन मेरा नहीं है, जैन साधु चित्रभानुजी का है। चित्रभानुजी ने जैन धर्म तो रखा लेकिन जब मुनिपना छोड़ दिया और शादी भी कर ली तब विरोध हुआ और कहा लोगों ने, आप जैन मुनि होकर यह कर रहे हैं? उसने कहा, बहुत चिंतन के बाद मुझे अंदर से यह लग रहा है, वेश के साधु से अच्छा है वृत्ति का साधु। यह अच्छा लगा मुझे। जो हुआ सो साफ़ कह दिया। मैं वृत्ति का साधु हूं। और यह कोई भी हो सकता है। नारी-नर कोई भी हो सकता है। पेन्ट में भी साधु हो सकता है। हाफ़ पेन्ट में भी साधु हो सकता है। कुर्ते-पायजामे में भी साधु हो सकता है। शूट-बूट में भी साधु हो सकता है। दिगंबर भी होता है, श्वेतांबर भी होता है, पीतांबर भी होता है। कोई गणवेश नहीं उनका मेरी दृष्टि में। मैं यह कहना चाहूंगा, साधु वो है जो बोलने में भी सावधान रहे। हम सबको सीखने जैसा है। नाझिर देखैया का शे'र है -

एवां न वेण काढो के कोई ना दिल ने ठेस वागे।
वाणी उपर बधो छे आधार मानवीनो।
जो जो गुमावशो ना एतबार मानवीनो।
एळे न जाय जोजो अवतार मानवीनो।

साधु बोलता है सावधानी से, सुनता है सावधानी से। सुनने में क्या है, सब शब्द जाएंगे कान में, लेकिन साधु सुनेगा तो कितना ग्रहण करने जैसा है वही सुनेगा। बाकी सब निकाल देगा। साधु का लक्षण है, बोलने में भी सावधान रहे, श्रवण में भी सावधान रहे, देखने में भी सावधान रहे। किसी को देखे तो बहुत विवेक दृग से देखे, विवेक चक्षु से देखे। निगाहों में बहुत भाषाएं बसती है। निगाहें एक बहुत बड़ा एन्सायक्लोपीडिया है पूरे विश्व का। क्या-क्या बोल देती है! साधु अपनी नज़रों में सावधान होते हैं। साधु का स्पर्श करना और झेन लोगों की बात सुने तो हर जगह सहज होकर के जो हो वो करते जाते हैं। सहजता ही उसकी सावधानी है। उसका उठना, उसका बैठना, उसका बोलना, प्रत्येक प्रक्रिया। जब लोक-मंगल में लोगों के बीच में रहना होता है, तब साधु हर चीज़ में सावधान रहता है।

साधु वो है नारद, जो मानद है। सबको मान देता है। प्यार जैसा कोई सम्मान नहीं है जगत में। सबको प्यार देता चलता है। इतना बड़ा दान देने के बाद भी साधु मदमुक्त होता है। अहंकार नहीं होता है साधु में। वक्ता

बोलने में सावधान, देखने में सावधान, खाने में सावधान क्योंकि लोक संग्रह बीच में रहना होता है, लोक संग्रह करना होता है। एकान्त की बात ओर है। समाज के बीच में हैं तब यह सावधानी क्योंकि लोग नकल करने लगेंगे। साधु हर चीज़ में सावधान होता है। उठना कैसे, बैठना कैसे, चलना कैसे। साधु जो मरजी ऐसे चले तो सावधानी कहां?

शुं पूछो छो मुजने के हुं शुं करुं छुं?
मने ज्यां गमे त्यां हरुं छुं फरुं छुं।

लेकिन कहा गया, 'विचारी विचारीने पगलां भरुं छुं।' कैसे चलना, साधु की सावधानी। चाल यह चरित्र का परिचय है। आगे आता है, 'धीर धर्म गति।' जो धीरजवान है और धर्म की व्याख्या नहीं करता लेकिन धर्म में गति करता है, आचरण करता है। हमारी क्या है, धर्म मति है। धर्म की व्याख्याएं तो बहुत भरी है, लेकिन राज़ हाथ में नहीं आया! गति नहीं है!

उलझनों में खुद उलझकर रह गए वो बदनसीब,
जो तेरी उलझी हुई झुल्फों को सुलझाने गए।
इससे बढ़कर क्या मिलती हमें दादें वफ़ा,
हम तेरे ही नाम से दुनिया में पहचाने गए।
- पारसा जयपुरी

मति में धर्म हो यह अच्छी बात है। मति में अधर्म नहीं होना चाहिए। सोच धर्म की हो लेकिन सोच पर्याप्त नहीं है, धर्माचरण, धर्म आचार। साधु हर चीज में सावधान रहता है। मानद; दूसरों को मान देता है। और प्यार से बड़ा कुछ सम्मान नहीं। मदहीना; यह सब होते हुए जिसके दिमाग में कोई मद नहीं, क्योंकि साधु कोई पद नहीं, पद होता तो मद अवश्य आता। साधु एक स्वभाव का नाम है।

सरल सुभाव न मन कुटिलाई।
जथा लाभ संतोष सदाई।।

फिर कहते हैं धीर; सावधान! साधु जो होता है वो धीरज बहुत रखता है। धैर्य बहुत महत्त्व की चीज़ है। आज की युवानी बात-बात में धैर्य गंवा देती है! विशेष सफलता उन्मत्त बना देती है। थोड़ी असफलता डिप्रेश बना देती है। धैर्य बहुत महत्व का है। 'शिवसूत्र' में लिखा है, 'धैर्य कंथा', गुदडी धीरज है।

'रामचरित मानस' में धर्मरथ की चर्चा करते हुए गोस्वामीजी एक रूपक बनाते हैं 'लंकाकांड' में, जिसका नाम है धर्मरथ। धर्मरथ का रूपक बनाकर धर्मरथ के सभी अंगों की चर्चा करते हैं कि धर्मरथ के दो पहिएं होते हैं। यह धर्मरथ के पहिएं कौन है?

सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ ध्वजा पताका।।

धीरज सावधानी का प्रतीक है। कोई ऐसा माहोल बन जाए और धीरज गंवा दे तो सत्य है, लेकिन जब ऐसा लगे कि अपने हाथ में कोई चीज़ है ही नहीं। तो फिर धीरज रखना ही बड़प्पन है, समझदारी है। आदमी को रास्ता मिलेगा, आदमी रास्ता खोज लेगा। ट्रेक पर रहना चाहिए। एक के बाद एक स्टेशन आते रहेंगे। ट्रेन चलती रहनी चाहिए और ट्रेक पर होनी चाहिए। लेकिन धैर्य जरूरी है। परम प्रबीन; 'परम' शब्द है इसीलिए 'प्रबीन' शब्द की महिमा बढ़ जाती है, वर्ना प्रबीण मानी चतुर, समझदार आदमी होना चाहिए। चतुर नहीं, चतुराईवाला आदमी समाज के लिए इतना उपयोगी नहीं है। वो खुद का कर लेगा! 'मानस-सावधान' को केन्द्रबिंदु बनाकर हम और आप कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा कर रहे हैं। आगे के सूत्रों की चर्चा कुछ कल करेंगे।

साधु का लक्षण है, बोलने में भी सावधान रहे, श्रवण में भी सावधान रहे, देखने में भी सावधान रहे। किसी को देखे तो बहुत विवेक दृग से देखे, विवेक चक्षु से देखे। निगाहों में बहुत भाषाएं बसती है। निगाहें एक बहुत बड़ा एन्सायक्लोपीडिया है पूरे विश्व का। साधु अपनी नज़रों में सावधान होते हैं। उसका उठना, उसका बैठना, उसका बोलना, प्रत्येक प्रक्रिया। जब लोक-मंगल में लोगों के बीच में रहना होता है, तब साधु हर चीज़ में सावधान रहता है।

मन को बांधो नहीं, मन को सांधो

आगे बढ़ें उसके पहले दो बातें। एक तो अभी-अभी गुजरात में गाई गई एक कथा के सार की एक छोटी-सी पुस्तिका गुजराती, हिंदी और अंग्रेजी में जो प्रसाद के रूप में बांटी जाती है, उसका पूज्य बाबा के हाथ से लोकार्पण हुआ। मैं मेरी प्रसन्नता प्रकट करता हूं कि हमारे विवेकशील नीतिनभाई और इस प्रेमयज्ञ में केवल अनुराग के कारण आहुति देनेवाली इस पूरी टीम को मैं मेरी बधाई देता हूं। दूसरी प्रसन्नता का विषय यह है कि सुबह जब मैं अपने नित्य कर्म से निवृत्त हुआ तो मुझे एक मंगल खबर मिली कि पूज्यपाद बाबा (रामदेवबाबा) का संदेश रात को आया कि कल नौ बजे मैं आऊंगा। और साथ-साथ चलूंगा कथा में और थोड़ी देर रहकर चला जाऊंगा। यह आपकी अहेतु कृपा है कि आप आए। ग्रंथ और गुफ़ाओं में रहा योग जिसने मैदान में लाकर खड़ा कर दिया। जो योग दुर्गम और दुर्लभ माना गया वो आज विश्व के मैदान में इस महापुरुष ने, इस फ़कीर ने लाया। मैं नियमित तो कोई योगा नहीं करता, लेकिन चौपाईयां गाता हूं। आरोह-अवरोह जो स्वाभाविक होता है, उसमें शायद मेरा योगा आपकी कृपा से हो जाता है।

जो इस कथा का केन्द्रीय विचार है, 'मानस-सावधान।' कुछ और चर्चा करें। किन-किन वस्तु में सावधान होना चाहिए? श्रीमन् महाप्रभुजी ने, वल्लभाचार्य ने एक ग्रंथ लिखा, 'विवेक धैर्याश्रय।' तीन शब्द है-'विवेक', 'धैर्य' और 'आश्रय।' महाप्रभुजी कहते हैं साधक को, वैष्णव को; सब वैष्णव है, पूरी दुनिया वैष्णव है। जो पीड़पराई जाणें वो वैष्णव, और क्या? तो तीन बात में सावधान रहे कि कहीं हमारा विवेक खंड़ित न हो जाए। दूसरी बात, दूसरा सूत्र आपने दिया है धैर्य। धैर्य में भी विवेक न खोए। मुश्किल है। बोलना तो बहुत आसान है पर हम पर जब बीतती है, तब हमारा धैर्य कहां रहता है? अधैर्य के कारण हम विवेकच्यूत हो जाते हैं। आलोचना तो लोग करते हैं। मैं एक पंक्ति गाता रहता हूं, 'कुछ तो लोग कहेंगे, लोगों का काम है कहना।' और कोई निंदा करे, आलोचना करे तो बाप, किरण चौहाण का एक शे'र है-

आपणे मोटा थवा कंई पण नहीं करवुं पडे।
आपणी इर्ष्या करीने लोक नाना थई जशे।

हम कहते हैं ना, किसी की रेखा छोटी करनी हो तो उसे काटने की कोशिश मत करना, एक लंबी रेखा कर दो तो वो अपनेआप छोटी हो जाएगी। किरण ने ठीक कहा कि इर्ष्या करनेवाला खुद छोटा हो जाएगा। हमारा धैर्य भंग होता है। महापुरुष का धैर्य भंग नहीं होता। उसका विवेक खंड़ित नहीं होता। तो महाप्रभुजी हमें बहुत प्यारी सीख देते हैं कि चार वस्तु का ध्यान रखना, सावधान रहना, तो धैर्य बना रहेगा। एक तो जिसको विषम परिस्थिति में अपने धीरज को संभाले रखना है, उसको अनाग्रही हो जाना। किसी चीज़ में जिद्द करके आग्रह नहीं करना। हमारी धीरज टूट रही है क्योंकि हम आग्रह करते हैं, हम यह चाहते हैं। श्रीमन् महाप्रभुजी का बहुत प्यारा सूत्र है अनाग्रह। संकल्प जरूर करे बस, लेकिन चढ़ाव-ऊतार के कारण विवेक न खो जाए। मेरे लिए यह करे, मेरे लिए यह करे, कोई आग्रह नहीं है। मैं सबके लिए क्या कर सकता हूं, उसके लिए अनवरत प्रयत्न। देश मेरे लिए क्या करे वो बात छोड़ो। मैं देश के लिए क्या करूं?

दूसरी बात महाप्रभुजी ने कही है, सहन करना। कलियुग का तप क्या? आप सच्चे हो फिर भी आप चुप रहते हुए सहते जाओ यही तप है। सहन करना, सहना आदमी के धैर्य को बरकरार रखेगा। तीसरा सूत्र दिया आपने त्याग। उपनिषद कहता है, आदमी के पास लोग कितने हैं, आदमी का कर्मजाल कितना है, आदमी के पास धन कितना है वो महत्त्व का नहीं है। त्याग आदमी के धैर्य को बना रखता है। चौथा असामर्थ्य का अनुभव। बस, मेरी सीमा आ गई!

थोड़ी धीरज तो हम सब की डामाडौल हो जाती है, विवेक गिरने लगता है। लेकिन जो सावधान होगा वो आदमी तुरंत संभल जाएगा। थोड़ा समय मिल गया तो आदमी सावधान हो जाएगा। अपने को संभाल लेगा। अब तेरी कृपा चाहिए। कुछ बातें ऐसी है, कृपा से ही संभव है। हम से नहीं होगा, किसी बादशाह के करम से होगा। हमें यदि कुछ ऊंचाई भगवद्कृपा से प्राप्त हुई है तो असामर्थ्य का बोध हो कि अब मेरी सीमा आ गई बस, अब मैं आगे नहीं कर पाता। श्रीमद् महाप्रभुजी कहते हैं, या तो तुम पूर्णकाम का आश्रय करो या तुम निष्काम का आश्रय करो। और आखिर में कहते हैं आश्रय।

कुछ आगे बढ़ें। जो ग्यारह बार 'सावधान' शब्द का प्रयोग 'मानस' में हुआ है। पहले कथा कह दूं थोड़ी कि राम का जनम हुआ। चारों भाईयों का नामकरण हुआ। फिर विश्वामित्रजी उनको आश्रम में ले गए। यज्ञ सफल हुआ। फिर अहल्या का उद्धार करके भगवान जनकपुर गए। धनुष्य तोड़ दिया। शादी हो गई। भगवान लौट आए फिर 'अयोध्याकांड' में भगवान का वनवास हुआ। राम वनवास के बाद पिता की मृत्यु हुई। भरत पूरी अयोध्या को लेकर चित्रकूट जाते हैं। फिर पादुका लेकर लौटते हैं। फिर उसके बाद 'अरण्यकांड' का आरंभ होता है। 'अरण्यकांड' के बारे में मुझे आपको यही कहना है। शबरी के आश्रम में जाना है, वहां 'सावधान' शब्द का प्रयोग होता है। मैं आप-से निवेदन करूंगा कि 'अरण्यकांड' में चार स्त्रियों के चरित्र है तुलसी के 'मानस' में। इन दो अत्यंत महान महिलाओं का चरित्र है और इनमें दो अति निम्न माने जाते हैं, उसका चरित्र है। 'अरण्यकांड' में भगवान सबसे पहले चित्रकूट से निकलकर अत्रि के आश्रम में जाते हैं वहां जानकीजी और अनसूया की भेंट होती है। अनसूया का चरित्र 'अरण्यकांड' में आया है। बहुत ऊंचाई पकड़ी हुई है इस महिला ने। वाल्मीकिजी तो कहते हैं, सीता का चरित्र ही महान है। पूरे वाल्मीकिदर्शन में तो जानकी ही केन्द्र में है। तो दो बहुत ऊंचाई पर पहुंचे महिमावंत मातृशक्ति का चरित्र 'अरण्यकांड' में आया और दो बिलकुल निम्न एक तो शूर्पणखा का चरित्र आया 'अरण्यकांड' में। वो तो हकीकत में निम्न है, लेकिन दूसरा चरित्र है वो शबरी का चरित्र है। वो निम्न नहीं है लेकिन वो खुद कहती है, मैं अधम हूं। यह उसका आत्मनिवेदन है। आत्मनिवेदन एक भक्ति है। जातिहीन हूं, ऐसा वो कहती है। तो चारों नारी चरित्र पर फ़ोकस किया गया है। अनसूया, सीता, शूर्पणखा और शबरी। चलिए, हम शबरी के आश्रम की ओर जाएं। अत्रि का आतिथ्य प्राप्त करके भगवान आगे बढ़ते हैं। रास्ते में शरभंग महात्मा मिले, सुतीक्ष्ण मिले, कुंभज ऋषि के पास गए। भगवान राम आगे बढ़ते हैं। रास्ते में जटायु से मैत्री की और प्रभु गोदावरी के तट पर पर्णगृह बनाकर निवास करते हैं। वहां लक्ष्मणजी पांच प्रश्न पूछते हैं। भगवान राम उसका आध्यात्मिक उत्तर देते हैं। उसके बाद शूर्पणखा आती है। दंडित हुई। खर-दूषण को निर्वाण प्राप्त हुआ है। शूर्पणखा ने जाकर रावण को उकसाया। रावण आया और जानकी का अपहरण किया। जटायु शहीद होता है। रावण इस तरह जानकी को लेकर लंका में अशोकवाटिका में रखता है। यहां भगवान राम मारीच को निर्वाण देकर लौटते हैं। सीताहीन पंचवटी को देखकर प्राकृत लीला की। रोए, आगे बढ़े, जटायु मिले। जटायु को सारूप्यमुक्ति प्रदान की।

भगवान वहीं से आगे बढ़े। भगवान शबरी के आश्रम में पधारते हैं। राम को लगा, मानो मैं आश्रम में नहीं आया, अपने घर में आया। शबरी भगवान राम का दर्शन करते हुए खुद को धन्य करती है। भगवान के रूप का दर्शन और अपनी असमर्थता व्यक्त करती है कि मैं आपकी स्तुति कैसे करूं? मैं अधम हूं। जड़ बुद्धि है मेरी, अधम में भी अधम! प्रभु ने कहा, मैं केवल और केवल भक्ति के नाते को कुबूल करता हूं, प्रेम के नाते को कुबूल करता हूं। आओ, मैं आपको नौ प्रकार की भक्ति कहूं। यद्यपि शबरी स्वयं भक्ति स्वरूपा है। फिर भी शबरी को निमित्त बनाकर भगवान राम हमको नौ प्रकार की भक्ति कहते हैं। शबरीजी, मैं आपको निमित्त बनाकर नौ प्रकार की भक्ति गाने जा रहा हूं। आप सावधान होकर सुनिए और मन में धारण करिए। एक तो आग्रह कि सुनो और दूसरी अपेक्षा कि जो मैं कहूं वो आप मन में धारण करो। बुद्धपुरुष या परमात्मा के शब्दों को यहां मन में धारण करने की आज्ञा है। यहां मन के दो अर्थ मेरी दृष्टि में है। मन मानी पूरा अंत:करण। यद्यपि अंत:करण चतुष्टय माना जाता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार चारों विभाग में बांटा गया है। भगवान ने कहा, सावधान होकर सुनो और मन में धारण करो। कोई यह प्रश्न उठा सकता है कि

मन में धारण करना, तो बुद्धि में धारण नहीं करना? निर्णय तो बुद्धि करेगी। बुद्धि में ही धारण करना, चित्त में नहीं धारण करना? क्योंकि संग्राहक तो चित्त है। जनम-जनम की बात है। चित्त संग्राहक बनकर बैठा है। अंत:करण का एक भाग अहंकार है और अहंकार शिव है। शिव स्वयं भक्ति के दाता भी है और भिक्षु भी है। भक्ति के प्रदाता भी है। कुंभज को भक्ति दी है। कथा सुनने के बाद सावधान इसलिए कहा गया कि हम जो भी सुने, मैं और आप, मैं बार-बार यह क्लिअर करता रहता हूं कि कोई भेद पैदा न हो। मुझे यहां बोलने का दायित्व है कल तक इस कथा में। बाप! लेकिन यह बेकार श्रम नहीं है।

चाहा तो न था कि जग में मशहूर हो जाऊं।
इच्छा तो इतनी है कि खुद को मंज़ूर हो जाऊं।

- राजेश रेड्डी

तो, 'मन' शब्द का खास उपयोग किया है उसके पीछे कोई रहस्य हो सकता है। कोई भी चीज़ स्थिर पात्र में धारण होनी चाहिए। अस्थिर पात्र में रखने से कोई फ़ायदा नहीं। हिलते हुए पात्र में आप पानी रखोगे तो गिर जाएगा, ढल जाएगा या तो तरंगें पैदा करेगा। चीज़ तो वहीं रखनी चाहिए जो स्थिर है, शुद्ध है, रिक्त है। यहां गोस्वामी सावधान करते हुए कह रहे हैं, तेरे चंचल मन में तू धारण कर। यह बड़ा मुश्किल लगता है! भगवान शंकर मन को सावधान कर देते हैं और फिर कथा कहते हैं। हम तो जीव है, शिव तो नहीं है। स्थिर पात्र में तो कोई भी धारण कर सकता है। मन अस्थिर है, इस में धारण करने की बात विशिष्ट है।

मन की गति, मन का चांचल्य, पांच प्रकार का माना गया है। 'मानस' को केन्द्र में रखकर आप-से बात करूं तो एक तो मन की मीनगति मानी गई है। उसका चांचल्य मछली जैसा है। मन का एक चांचल्य का रूप है मर्कटगति, बंदर का चांचल्य। 'कपि चंचल सब ही बिधि हीना।' मन का एक तीसरा चांचल्य है वो है मधुकर; भंवरे का चांचल्य। मन का चौथा चांचल्य है मृगगति। मृग का एक अर्थ तो सीधा होता है प्राणीमात्र, लेकिन यहां हिरण अभिप्रेत है। मन का एक चांचल्य है हिरण का चांचल्य। जैसे मारीच मृग बनकर आता है। मदोन्मत्त हाथी का चांचल्य। हाथी इतना भारी है, उतना चंचल नहीं लेकिन जब मदयुक्त होता है तब उसका चांचल्य विनाश कर देता है। अब पांच प्रकार का चांचल्य हम सबके मन में है। कैसे इस अमृत को धारण करे इसीलिए यह शब्द आया है 'सावधान।' हमको सिखाया गया है कि मन को मारो! कहां मन मरता है? इनको अपने स्वभाव में रहने दो ना! मन से तकरार क्यों करे, एकरार करे। मैं भी कुछ गुरुकृपा से समझ पाया हूं। मैं तो इस पक्ष का आदमी हूं। मन से तकरार में कई साल बीत जाते हैं! और जिंदगी बहुत मूल्यवान है। मन को बांधो नहीं, मन को सांधो। हमको सिखाया गया है मन को बांधो। यह लाल वस्तु है उस पर मन को केन्द्रित करो। ॐकार पर केन्द्रित करो। यह ज्योति पर केन्द्रित करो। मछली कितनी प्यारी होती है! मछली की तरह हमारा मन चंचल हो तो उससे महोब्बत करो। मध्यकालीन संतों ने यह बहुत प्यारा प्रयोग किया, मन से समझौता किया, मन से गुफ़्तगू की। मन से अनुनय-विनय किया, जिद्द नहीं की। हां, जरूर कभी आलोचना की मन की मध्यकालीन संतों ने लेकिन बहुधा, ज्यादातर स्नेह से मन के साथ बातें की।

तो बाप, आपसे मैं संवाद कर रहा हूं। मन से समझौता किया जाए। लोग आते हैं, 'बच्चा बहुत चंचल है!' बालक चंचल होना ही चाहिए। अधिक चांचल्य ठीक नहीं लेकिन बच्चा तो नर्तन करना चाहिए। बच्चा तो आनंदित रहना चाहिए। मन भगवान की विभूति है। उससे दुश्मनी न की जाए, दोस्ती की जाए। तकरार क्यों? मछलियां तैरती हो तो बहुत सुंदर लगती है। बांधो, पकड़ लो, तो मर जाएगी! उसको तैराना। कहां तैराना है? भक्ति के जल में। माछीमार मत बनो। इस मन के चांचल्य को दीक्षित किया जाए। मर्कट, बंदर बैठा रहे तो अच्छा लगेगा? बंदर तो कूद-कूद करना चाहिए। शाखा से शाखा पर उछलना चाहिए मर्कट तो! ये उसकी शोभा है, उसका स्वभाव है मर्कट का। मन का भी अपना स्वभाव है। मनरूपी मर्कट को कहो कि तू कूद लेकिन यह तेरी शरारत नहीं होनी चाहिए, तेरी खोज होनी चाहिए। जंगल-जंगल घूम एक शाखा से दूसरी शाखा, एक पेड़ से दूसरे पेड़ लेकिन यह तेरी खोज होनी चाहिए। यह खोज कर कि किस पेड़ के नीचे राघव बैठा है? तो हे मन, परमात्मा तुम्हें अपने समान बना देगा। मन मृग; मृग दौड़ता रहता है, पारधी पीछे भागता है लेकिन मृग का यह एक लक्षण है, आप गीर के जंगल में कहीं भी घूमे

होंगे तो यह एक आपको पता होगा, हिरन भागता है तो मुड़-मुड़ कर तुम्हारी ओर देखता है। फिर भागेगा, फिर देखेगा। मारीच मन का प्रतीक है। कांचन मृग बनकर आया है। लेकिन भगवान राम उसके पीछे पारधी बनकर उसको निर्वाण देने के लिए, प्रेमी को परम पद देने के लिए दौड़े तो मारीच जा रहा है लेकिन मुख बार-बार हरि की ओर करता है। बार-बार हरि का दर्शन करता है। ऐसा मन तो वंदनीय है। निंदनीय कहां हो गया? मन मतवाला हाथी; 'श्रीमद् भागवतजी' की कथा से सब परिचित है। गज का उद्धार। एक समय था; उसका मद, उसका बहुत बड़ा विशाल परिवार लेकिन जब फ़ंस गया तो कुत्ते की तरह बिनती करने लगा कि मुझे बाहर निकालो! मदमस्त मन को सीख दी जाए कि यदि पुकारना है तो एकाद कंवल लेकर थोड़ी असंगता प्राप्त कर ले। मदमस्त हाथी है तो उसका गजराज की तरह सद्उपयोग किया जाए। उसी फ़ंसे हुए मन से उसको पुकारा जाए तो सार्थक होगा। कृष्ण दवे कहते है-

आवशे, ए आवशे, ए आवशे, ए आवशे।
तुं प्रतीक्षामां अगर शबरीपणुं जो लावशे।

मन मधुकर; भंवरे की तरह मन हर फूल पर जाता है। कभी इधर, कभी उधर। लेकिन वो ही भंवरे को जो फूल चाहिए वो मिल जाता है तो स्थिर हो जाता है। और जब सायंकाल को कंवल की पंखुरियां बंद होती है! कोई सर्जक, कोई साहित्यकार उसको कहते हैं, उड़ जा, उड़ जा, अभी तुझे कैद होगी। लेकिन महोब्बत के कारण वो वहां स्थिर हो जाता है। मधुकर की तरह यह मन कृष्ण चरण कमल मिल जाए तो स्थिर हो जाता है। पद पंकज में वो कैद होना चाहेगा। धन्य होना चाहेगा। चंचल मन को दीक्षित कर लिया जाए। इसीलिए राघव बोले-

नवधा भगति कहउं तोहि पाहीं।
सावधान सुनु धरु मन माहीं।।

'रामचरित मानस' में 'भागवत' कथित भक्ति का संकेत के रूप में इंगित किया है। 'मानस' का जो अपना ढंग है, राघव जो शबरी के सामने कहते हैं नव प्रकार की भक्ति वो भी है। लक्ष्मण के सामने भगवान जब बोले तब 'भागवत' की भक्ति का उपदेश किया है। 'श्रवणादिक नव भक्ति दृढाइ।' भक्ति की कई विधाएं है। तो बाप, भक्ति की कई विधा है इसीलिए हम असमंजसता में कन्फ्यूझ हो जाते हैं! हमारी रुचि में कीर्तन प्रिय है, कीर्तिन करो; जप प्रिय है, जप करो; श्रवण प्रिय है, श्रवण करो। प्रत्येक व्यक्ति की रुचि भिन्न है। इसीलिए सुविधा भारतीय भक्ति दर्शनों ने दी। शांडिल्य कुछ कहते हैं। अंगीरा कुछ कहते हैं। सनकादिक कुछ कहते हैं। नारद कुछ कहते हैं। सबका अपना-अपना दर्शन ग्रंथों में उपलब्ध है। 'रामचरित मानस'वाली जो भक्ति है यहां वो नव प्रकार की भक्ति का दर्शन है। ज्ञान बहुत कठिन है। लेकिन भक्ति तो सरल है। युवान भाई-बहन, हम सब कर सके ऐसी भक्ति है।

पहली भगति किसी संत का संग करना। 'संत' शब्द थोड़ा ऊंचा लगे तो साधु का संग करना। वो भी ऊंचा लगे तो सज्जन का संग करना। जिसमें मात्रा में अच्छाई ज्यादा हो ऐसे की कंपनी में रहना सत्संग है। तिलक करो, माला रखो यह कोई बात नहीं। यह हम रखते हैं, यह हमारी निजी बात है। बाकी मैं थोड़ा आपको कहूं कि आप तिलक करो, माला रखो? मैंने आज तक किसी को नहीं कहा कि काली बिंदी कर। सबको मौज आती है, कर ले, बात और है। तिलक, माला, छाप यह आवश्यक नहीं है। करो तो और बात है। हमको तो आनंद आता है। भक्ति का मतलब अच्छे आदमी का संग, बस यह भक्ति। अच्छा संग हो, कौन नहीं चाहता? यह पहली भक्ति है।

दूसरी भगति जहां सद्वार्ता होती हो, भगवद्कथा का गायन होता हो, जितना समय मिले भगवान की कथा, अच्छी बातों में रस लेना। रस आया, आनंद आया तो उतना समय सुनना भक्ति है, बस। भगवान की कथा में रति यह दूसरी भक्ति है। तीसरी भक्ति अभिमान छोड़कर जिसके मार्गदर्शन में हमारा विकास और विश्राम होता हो ऐसे किसी महापुरुष की सेवा। हमारा गुरु, हमारा आचार्य जिसके कारण हम विकसित हुए हो। विकास करते-करते हम विश्राम को भी पाए ऐसे कोई मार्गदर्शक के मार्गदर्शन में जीना। चौथी भक्ति कपट छोड़ कर जो मेरा गुणगान गाए। शुभ का गायन, चौथी भक्ति। आपको 'हरि' शब्द,

'परमात्मा' शब्द अनुकूल न पड़े तो शुभ का गायन, बस! फिर वो फिल्म का गीत भी चलेगा। कोई परहेज नहीं है। कोई अस्पृश्य नहीं है। शुभ होना चाहिए।

विश्वासपूर्वक अपने गुरु ने अथवा शास्त्र ने अथवा तुम्हारी श्रद्धा हो उसने कोई मंत्र दिया हो तो दृढ़ विश्वास के साथ इस मंत्र का जप करना पांचवीं भक्ति है। कितनी बार जप कर यह यहां लिखा नहीं है। मैं 'मानस' के आधार पर बोल रहा हूं। १०८ बार जपना नहीं लिखा है। सौ बार, या सोलह हजार इतना जप करो, नहीं लिखा है। एक बार, दो बार, पांच बार जितनी आपकी मौज। मंत्र का एक अर्थ होता है विचार। प्रभु के विचार, परम के विचार। छठ्ठी भक्ति सम्यक्ता। न अधिक, न कम। 'भगवद्गीता' ने कहा है, जो बहुत जागता है वो भी योग को उपलब्ध नहीं होता और जो बहुत सोता है वो भी योग को उपलब्ध नहीं होता। बहुत खाता है वो भी योगी नहीं बन पाता और जो बहुत भूखा रहता है वो भी योगी नहीं बन पाता। सम्यक्, जितना जरूरी हो इतना। 'बिरति बहु करमा' का अर्थ है बहुत कर्मजाल से धीरे-धीरे निवृत्ति। अमुक उम्र तक कर्म करो लेकिन एक उम्र के बाद इसमें से थोड़ी निवृत्ति की ओर, जिसको प्रत्याहार कहते हैं, लौटना कहते हैं और वो छठ्ठी भक्ति है। 'छठ दम' का मतलब होता है, छः विकारों का दमन। षड् रिपु जिसको हम कहते हैं, उसको नियंत्रित करना। क्रोध को नियंत्रित करना। काम को नियंत्रित करना।

सातवीं भक्ति वो है कि सबमें हरि का दर्शन करे। कठिन है लेकिन जितना हो सके। भगवान कहते हैं, शबरी, सातवीं भक्ति का एक दूसरा भाग यह है कि मेरे से भी मेरे संत को बड़ा माने। विष्णु से वैष्णव को बड़ा समझना यह सातवीं भक्ति है। इन्सान की कद्र होनी चाहिए। परमात्मा तो है ही, परमात्मा से ज्यादा उन्होंने बनाया हुआ मानव की इज्जत होनी चाहिए। आठवीं भक्ति है, पूरा पुरुषार्थ करने के बाद जो पाया उसमें संतुष्ट होना। करना पुरुषार्थ पूरा, लक्ष्य भी बड़ा रखना लेकिन पूरे प्रामाणिक प्रयासों के बाद जो उपलब्धि हुई उसमें फिर संतुष्ट हो जाना। और दूसरा भाग उसका है, दूसरों के दोषों को न देखे।

नवम सरल सब सन छलहीना।
मम भरोस हियं हरष न दीना।।

नववीं भक्ति जीवन सरल, वर्तन सरल, वेश सरल। सरलता जीवन का मंत्र बन जाए। सरल, सहज जीना जीवन का मंत्र बन जाए। किसीसे छल न करे। केवल मेरा भरोसा रखना। भरोसा रखेंगे तो हर्ष, शोक सताएंगे नहीं। व्यासपीठ का तो सूत्र है, भरोसा ही भजन है। अखंड विश्वास यह नववीं भक्ति है। सरल जीवन; छल-कपट न करे किसीसे और हरि का भरोसा।

प्रभु कहते हैं, नव में से एक भी जिसमें हो वो मुझे अत्यंत प्रिय है। फिर भगवान शबरी को कहते हैं, हम सीता को खोजने निकले हैं। स्वयं राम शबरी से पूछत हैं कि हमें सीता कहां मिलेगी? 'राघवेन्द्र, आप पंपासरोवर जाईयो। वहां सुग्रीव से आपकी मैत्री होगी। फिर सुग्रीव आपको आगे का मार्गदर्शन करेगा।' शबरी को परमपद प्राप्त हुआ। भगवान वहीं से पंपा सरोवर पहुंचे। नारदजी भगवान को प्रश्न पूछते हैं कि मैं जब विश्वमोहिनी में मोहित हो गया और मैंने शादी करना चाहा तो महाराज, आपने मेरी शादी क्यों रुकवाई? और आज आप एक नारी के विरह में रोते-रोते घूम रहे हैं! फिर भगवान राम ने आसक्तियों के, कामनाओं के कुछ लक्षण की चर्चा की। फिर नारदजी कहते हैं कि प्रभु, आप संत के लक्षण हमें बताए। नारद को प्रभु कहते हैं। लेकिन मैं और सरल करना चाहूं तो मेरी संत की व्याख्या यही है, जो किसी भी बात में तंत न करे वो संत। कोई बात में तंत नहीं, तेरा सिद्धांत यह है? चलो, प्रणाम। कौन वाद-विवाद में उतरे? यह पंडितों का काम है! वाद-विवाद करना साधु का काम नहीं है। तंत नहीं करना।

भजन करना है तो छोड़ो तंत। नरसिंह मेहता की पंक्ति याद रखना-

एवा रे अमे एवा रे, तमे कहो छो वळी तेवा रे,
भक्ति करतां भ्रष्ट थईशुं, तो करशुं दामोदरनी सेवा रे।

तंत न करे वो संत। जिसका कहीं भी अंत न हो उसका नाम संत। 'भगवद्गीता' में कहा, भगवान की विभूतियों का कोई अंत नहीं है।

पांचीकाना होय, होय नहीं कदी संतना ढगला।
संत सहुने मुक्ति वहेंचे, नहीं वाधां, नहीं डगला।
दुर्लभ ए दरवेश के जेनां काळ साचवे पगलां।

रमेश पारेख कहते हैं कि ऐसा दरवेश दुर्लभ है। सभी को मिले लेकिन खुद को दाग न लगने दे। खुद को दाग न लगे ऐसे पूरे जगत से असंग वृत्ति से रहे। तो न अंत, न तंत। जिसकी आंख में अमृत हो, जिसके वर्तन में शास्त्रों का संयम हो, जिसकी वाणी में प्रिय सत्य हो, जो हमारा कभी शोषण न करता हो ऐसा कोई महापुरुष मिल जाए वो साधु। और क्या? प्रभु ने संत के लक्षण बहुत गिनाए। उसमें फिर 'सावधान' शब्द का प्रयोग आया है-

सावधान मानद मदहीना।
धीर धर्म गति परम प्रबीना।।

साधु का एक लक्षण जो रामजी ने बताया। जो सावधान है वो साधु। सबको मान देता हो वो साधु। सबको आदर, विनय से भर दे लेकिन इस बात का कभी गरूर न करे वो साधु। इस बात का कभी अहंकार न करे। धर्म की व्याख्या नहीं, धर्मगति करे धर्म के आचरण में उतरे। केवल प्रवीण नहीं, 'परम प्रबीना।' नारदजी के सामने प्रभु ने संतों के लक्षण गिनाएं और फिर बोलते-बोलते प्रभु कहते हैं नारद, शेष और सरस्वती भी नहीं कह सकते इतने संत के लक्षण होते हैं।

'किष्किंधाकांड' में राम-लक्ष्मण जानकी की खोज करते हुए आगे बढते हैं। रिष्यमुख पर्वत पर सुग्रीव सचिवों के साथ रहता है। सुग्रीव हनुमानजी को कहता है, आप पता लगाओ। श्री हनुमानजी महाराज सुग्रीव की आज्ञा मानकर ठाकुरजी जहां है वहां जाते हैं। हनुमान की पहली भेंट किष्किंधा के रिष्यमुख पर्वत की तलेटी में। हनुमानजी महाराज प्रवेश करते हैं ब्राह्मण के रूप में। उस समय में जो ऐसी विद्या जानता है वो रूप बदल सकते थे। उस समय में ब्राह्मण का रूप ज्यादा लिया जाता था। क्योंकि ब्राह्मण पर लोगों को पूर्ण विश्वास रहता था। लंका में हनुमानजी विभीषण के पास जाते हैं तो भी ब्राह्मण के रूप में जाते है, सुंदर वचन सुनाते हैं। विनम्रता से पूछा, एक श्याम, एक गौर आप दोनों कौन है? आपके भाल को देखता हूं तो क्षत्रिय लगते हैं। वेश से मुनि लगते हैं। हनुमानजी के मुख से निकल गया, 'हे स्वामी, आप बन-बन क्यों घूमते हैं? आप है कौन?' और भगवान पहले प्राकृतिक परिचय देते हैं। इतने वार्तालाप में तो हनुमानजी पहचान गए कि यह तो मेरा ठाकुर है! हनुमानजी महाराज ने भगवान को पहचानते ही चरण पकड़ लिए! युवान भाई-बहन, दूसरे का प्रभाव देखकर सीधे पैर मत पकड़ लेना। उसका पूरा परिचय मिले उसके बाद उसके पैर पकड़ना। और एक बार पकड़े फिर कभी छोड़ना नहीं। हनुमानजी महाराज ने अंधश्रद्धा से राम के चरण नहीं पकड़े। पहले पूछा, आप कौन है, क्या है, कहां से आए हैं? और पूछते-पूछते जब पता लगा कि यह तो ब्रह्म है तब पैर पकड़े। फिर सुग्रीव और राम की मैत्री होती है। फिर वालि का वध होता है, निर्वाण होता है। सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाया। अंगद को युवराजपद दिया।

भगवान प्रवर्षण पर्वत पर वर्षाऋतु में व्रत के अनुसार चातुर्मास करते हैं। चार महिने के बाद सुग्रीव प्रभु का काम भूल गया! वादा किया था कि मैं जानकी की खोज करा दूंगा। लेकिन आदमी को वैभव मिलता है तो चुक जाता है। प्रभु ने थोड़ा भय दिखाया। सुग्रीव को थोड़ा सावधान किया। योजना बनी जानकी की शोध की। दसों दिशा में बंदर-भालू को भेजे गए। दक्षिण में जहां भक्ति प्रगट हुई है, उस दिशा में खास लोगों को भेजा। जिसमें मार्गदर्शक वयोवृद्ध जामवंत है, टुकड़ी का नायक अंगद है वालिपुत्र। हनुमानजी भी उसमें है। सब भगवान को प्रणाम करते-करते जाने लगे। हनुमान सबसे पीछे है। काम तो हनुमान ही करनेवाले हैं। जो काम करता है वो हरदम पीछे रहता है। नहीं करता वो ही कूद-कूद कर आगे आता है! भगवान ने देखा। सबसे अंत में हनुमानजी ने प्रणाम किया। प्रभु को लगा कि मेरा कार्य यही कर पाएगा। जैसे हनुमानजी ने प्रणाम किया।

निकट बुलाया। अपनी उंगली से वो रामनाम अंकित मुद्रिका निकाल कर दी। और हनुमानजी मार्गदर्शन लेकर माँ जानकी की खोज के लिए निकलते हैं। 'सुंदरकांड' का आरंभ होता है-

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई।
सहि दुख कंद मूल फल खाई।।

हनुमानजी निकले। लंका में प्रवेश किया। विभीषण से मुलाकात हुई। जुगति बताई। माँ जानकी तक पहुंचे। माँ और बेटे का मिलन हुआ। भगवान का गुणगान गाया। जानकीजी ने आशीर्वाद दिए। हनुमानजी को भूख लगी और मधूर फल खाते हैं, तरु तोड़ते हैं। राक्षस लोग आकर हनुमानजी को बांधकर लंका ले गए। रावण कूपित होकर हनुमानजी को मृत्युदंड का एलान करता है। इसी समय विभीषण आता हैं, राजन्, नीति कहती है, दूत को मारा न जाए। मंत्रीमंडल की आपातकालीन बैठक हुई कि ऐसा करो, बंदर को पूछ पर ममता होती है। उसकी पूंछ को आग लगा दी जाए। लेकिन हनुमान जैसा बुद्धत्व होगा तो वो नहीं जलेगा, समाज की मान्यताओं जला देगा। पूरी लंका जली है। समुद्र में स्नान किया और हनुमानजी माँ के पास आए। माँ ने चूडामणि दी। श्री हनुमानजी समुद्र लांघकर इस पार आए। जामवंत ने सुग्रीव को सब बातें बताई। राम को जामवंतजी ने उस समय हनुमंतचरित्र सुनाया। राम ने हनुमान से कहा, तुम्हारे ऋण से रघुवंश कभी मुक्त नहीं होगा। हनुमानजी राम के चरण पकड लेते हैं! उसी समय भगवान उनके सिर पर हाथ रखते हैं। भगवान का वरद हस्त, अभयद हस्त हनुमानजी के सिर पर। शिव पार्वती को कथा कह रहे हैं और हनुमानवाली बात पर शिव मगन हो गए। मगन हो गए तो कथा रुक गई! फिर तुलसी 'सावधान' शब्द बोलते हैं-

सावधान मन करि पुनि संकर।
लागे कहन कथा अति सुंदर।।

कथा कहने के लिए फिर शिवजी ने अपने मन को सावधान किया और कथा आगे कहते हैं। यहां भगवान राम अपनी सेना को लेकर समुद्र के तट पर आते हैं। विभीषण लंका से निष्कासित कर दिया गया। राम की शरण में आया। प्रभु राम ने विभीषण की राय ली कि लंका में कैसे जाए। बोले, महाराज, तुम्हारे कुल में समुद्र पूज्य है। तीन दिन समुद्र की पूजा करो और समुद्र यदि हमें मार्ग दे तो बल का प्रयोग नहीं करना। तीन दिन उपवास किया। समुद्र ने कोई जवाब न दिया तब प्रभु ने नरलीला में थोड़ा रोष किया। समुद्र ब्राह्मण के वेश में प्रभु के सामने आया। कहा, आप सेतु बनाओ। रामजी को लगा, मेरी यात्रा ही तो सेतुबंध की है। तोड़ने की नहीं, जोड़ने की है। 'लंकाकांड' के आरंभ में सेतुबंध की रचना हुई। और भगवान राम ने कहा, यह उत्तम धरणी है। मेरी इच्छा है कि यहां शिव की स्थापना की जाए। ऋषिमुनियों को बुलाए और भगवान ने शिवजी की स्थापना की। यही तो सेतु था वैष्णवों और शैव्यों का। यही तो जोड़ने की प्रक्रिया थी। राम विष्णु के अवतार है एक अर्थ में और स्थापना कर रहे हैं शिव की। तुलसी को यही तो स्थापित करना था। रामेश्वर भगवान की स्थापना करके परमात्मा और पूरी सेना सागर पार होती है।

हमको सिखाया गया है कि मन को मारो! कहां मन मरता है? इनको अपने स्वभाव में रहने दो ना! मन से तकरार क्यों करे, एकरार करे। मैं तो इस पक्ष का आदमी हूं। मन से तकरार में कई साल बीत जाते हैं! और जिंदगी बहुत मूल्यवान है। मन को बांधो नहीं, मन को सांधो। हमको सिखाया गया है मन को बांधो। यह लाल वस्तु है उस पर मन को केन्द्रित करो। ॐकार पर केन्द्रित करो। यह ज्योति पर केन्द्रित करो। मध्यकालीन संतों ने यह बहुत प्यारा प्रयोग किया, मन से समझौता किया, मन से गुफ़्तगू की। मन से अनुनय-विनय किया, जिद्द नहीं की।

'मानस' का भरत एक ऐसा चांद है, जिसमें कोई कलंक नहीं

'मानस-सावधान' को केन्द्रबिंदु बनाकर हम कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के रूप में कर रहे हैं। 'रामचरित मानस' अंतर्गत सावधान करते हुए तीन महिला पात्र पसंद कर दिए गए हैं-एक भवानी, दूसरी सुनयना, तीसरी शबरी। भवानी को शिव सावधान कर रहे हैं। सुनयनाजी को मिथिलेश जनक सावधान कर रहे हैं और शबरीजी को भगवान राम सावधान कर रहे हैं। भुशुंडि गरुड को सावधान कर रहे हैं। गोस्वामीजी भगवान शंकर के बारे में 'सावधान' शब्द का प्रयोग करते हुए कुछ हमको कहना चाहते हैं। इस तरह बिलग-बिलग पात्रों के सामने, इनको निमित्त बनाकर 'सावधान' शब्द का प्रयोग हुआ है। हमनें तीन बिंदु को छुआ है। पहले दो दिन में 'जनम एक दुई कहउँ बखानी।' शिवजी ने पार्वती को रामजनम के जो कारण बताएं उनमें से दो कारणों की कुछ सूत्रात्मक चर्चा की। फिर भरत को केन्द्र में रखकर कुछ बातें हुई। हे सुनयना, भरत की कथा भवबंध बिमोचनी है। भरतचरित्र प्रेम को प्रगट करनेवाला चरित्र है। इसीलिए बहुत सावधान करते सुनयनाजी को वहां संबोधित किया गया है। भरद्वाजजी भरतजी के बारे में बोले हैं प्रयाग में कि भरत, आपके पास दो वस्तु है। एक तो आप कहते हैं कि मेरी माँ कैकेई ने भगवान राम को वनवास दिया और मुझे राजगादी देने का ममता के कारण, कुबुद्धि के कारण प्रस्ताव रखा। भरतजी आप कहते हैं, मेरे लिए यह कलंक है। दूसरा, हम देखते हैं कि आपका यशचंद्र, आपका कीर्तिचंद्र अद्‌भुत है। मेरे श्रावक भाई-बहन, जहां चांद होगा वहां कलंक होगा। बिना कलंक चांद नहीं हो सकता लेकिन मेरे 'मानस' के भरतजी विश्व का एकमात्र अपवाद है कि चंद्र होते हुए उसमें एक भी कलंक नहीं है। यद्यपि भरतजी तो कहते हैं, मेरी माँ ने मुझे कलंक लगा दिया! रघुकुल में यह धब्बा है! भरद्वाजजी कहते हैं-

तुम्ह कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु।
राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु।।

भरतजी, आप जिसको कलंक कहते हैं, हमारे लिए तो वह भक्ति रसायण बन गया। ध्यान देना, साधु की अपकीर्ति भी सावधानी से सुनी जाए तो हमारे लिए भक्तिरसायण बन जाता है। बड़ा अद्‌भुत सूत्र है। सावधानी इसीलिए कि हम किसी साधु की अपकीर्ति को असूया भाव से सुनते हैं। इसीलिए भक्तिरसायण नहीं बना। द्वेष पैदा हो जाता है, विरोध पैदा हो जाता है, विमुखता पैदा हो जाती है।

मेरे वैष्णव भाई-बहन, मुझे और आपको कथा क्या सिखाती है? कथा क्या सावधानी देती है? भगवान राम को भी कलंक लगा। दुनिया ने भी उंगली उठाई कि राम ने वालि को वृक्ष के पीछे छिपकर मारा। माँ जानकी को कलंक का धब्बा लगा दिया एक रजक ने! कैकेई को तो कलंक लगा ही लगा। ब्रह्मा को भी एक कलंक लगा कि वो अपनी ही एक रचना के पीछे दौड़े थे और फिर शंकर ने उसका एक सिर काट दिया था। जो सर्जक है, पितामह है उसको कलंक लगा। जहां चांद है वहां कलंक है लेकिन मुझे एक बड़ी प्रसन्नता है कि 'मानस' का भरत एक ऐसा चांद है, जिसमें कोई कलंक नहीं। साधु की अपकीर्ति भी भक्तिरसायण बन सकती है यदि सुननेवाले सावधानी से सुने तो। श्रवण एक विज्ञान है, एक सायन्स है। सुनना तो हो सकता है, श्रवण नहीं हो सकता। इसीलिए सावधानी से कथा सुनना बहुत आवश्यक है।

कुछ भरत के बारे में बोलकर आगे बढ़ूं। भरत, आपके यशचंद्र में कलंक नहीं है। कलंक कौन? 'गुरु अवमान दोष नहीं दूजा।' चंद्र में कलंक क्यों है, बहुत बातें कही जाती है चंद्र में कलंक की लेकिन चंद्रमाँ में कलंक, काला धब्बा जो लग गया है उसका एकमात्र जो मूल कारण यह है कि उसने अपने गुरु की धर्मपत्नी पर खराब दृष्टि की थी।

चांद के गुरु महाराज बृहस्पति। उतना ही नहीं, इसके पीछे यह दौड़ा था। आदमी को प्रतिष्ठा मिलती है तो आदमी थोड़ा चुक जाता है, सावधान! चांद को प्रतिष्ठा मिली। यद्यपि प्रकाश खुद का नहीं है, उधार है। हमको भी प्रतिष्ठा मिल जाती है, ये हमारा प्रभाव नहीं, सद्‌गुरु का प्रभाव है। हम तो उधार घूम रहे हैं यार! किसी की फिक्स डिपोज़िट में जी रहे हैं हम। किसी ने हमारे लिए अपनी तपस्या, हमारे लिए अपना भजन, हमारे लिए अपना त्याग एफ.डी. कर रखा है और कहा कि बेटे आश्रित, उसमें से लेकर मौज करो! हमने क्या जमा करवाया? लेकिन यह प्रभुता पाने के बाद मद किसको नहीं आता? लेकिन भरत का यशचंद्र ऊंचाई मिलने पर भी कलंक से मुक्त है। सबसे बड़ा कलंक चंद्र का था गुरु पत्नी के प्रति दुर्भाव। गोस्वामीजी सुंदर पंक्तियों में आलेख करते हैं। भरद्वाजजी के शब्द सुनिए मेरे भाई-बहन-

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा।
रघुबर किंकर कुमुद चकोरा।।

क्या सर्टिफिकेट, क्या प्रमाणपत्र देता है महर्षि भरद्वाज कि हे तात, हे भरत, हे बाप! मुझे आज सब पूछते हैं, 'बापू, आप 'बाप' क्यों कहते हैं?' जब हम तालियां लगाते हैं तो आप मना क्यों करते हैं?' मैं समझता हूं, आप रोक नहीं पाते हो अपने को। लेकिन तात दो संबोधन है। बाप को हम तात कहते हैं और बेटे को भी हम बाप कहते हैं। मेरा संबोधन आपके लिए दोनों है। आप मेरे लिए दो क्या सब कुछ है! जो इस कथा में मैंने आपको फ्लावर्स कह दिया है। और इस सूत्र को, इस गेंद को मेरे श्रोताओं ने पकड़ ली है। इससे पहले चिठ्ठी लिखनेवाले मुझे क्या लिखते? बापू, व्यासपीठ के हम आश्रित अथवा हम यह, हम यह। अपने-अपने भावानुसार लिखते। अब जितनी चिठ्ठियां आती है, लिखते हैं, आपका फ्लावर। अच्छा है यार! हमारा रिश्ता तो यही होना चाहिए, फ्लावर और माली का, मालिक का नहीं। और मेरे जो यह फ्लावर्स है। यह सुंदर बगियां है, वो फ्लावर को चुन-चुन कर मैं शोषण नहीं करूंगा। आपकी खुश्बू ठाकुर के चरणों मे समर्पित करूंगा। यह फ्लावर्स शिव समर्पित हो। यह फ्लावर कृष्णार्पित हो। यह फ्लावर्स रामार्पित हो। दो संबोधन है बाप! एक तो पिता, क्योंकि वक्ता से श्रोता बड़ा होता है। और बेटे से बाप बड़ा होता है। श्रोता वक्ता से बड़ा है, यस। 'मानस' में जब श्रोता-वक्ता की बात कही तो तुलसीदासजी ने पहला आदर श्रोता को दिया, 'श्रोता वक्ता ग्यान निधि।' पहले श्रोता का नाम लिया कि श्रोता-वक्ता दोनों ज्ञाननिधि है, ज्ञान का भंडार है। और दूसरा, बेटे को भी बाप कहा जाता है। भरद्वाज ने भरत को बाप कहा है। भगवान राम के किंकर, भगवान राम के दासरूपी कुमुद और चकोर की तरह आपका यशचंद्र कायम सुख देनेवाला है।

तो हम थोड़ा भरत पर स्पर्श कर रहे थे। थोड़ा उसका चरणस्पर्श कर रहे थे। मुझे तो इतना ही कहना था, यह आदमी ऐसा है जिसको गुरु अपमान का दोष नहीं है। बाकी शुरू-शुरू में नगरवासियों ने भी उंगली उठाई उस पर। लेकिन कोई कलंक उसको छू नहीं सका क्योंकि गुरु अपमान का दोष नहीं था। सबसे बड़ा कलंक है गुरु अपमान का, सावधान!

कुछ प्रश्न है, 'बापू, जय सीयाराम, जय भूतनाथ। कल मैं मेरे एक मित्र की पार्टी में गया था। वहां शराब परोसी जा रही थी लेकिन 'मानस-सावधान' चर्चा जीत गई और शराब हार गई! हुं घणां वर्षथी दारु पीतो हतो। मारा घरवाळा बधां मने कहेता हता पण हुं नहीं छोडी शकुं, एम हुं कहेतो हतो। गईकाले हुं घरे पीधा वगर आव्यो। मारा घरमां बधां बहु खुश थई गया! अने तमे बापू, मने व्यासपीठ पासे बोलावी आशीर्वाद आपशो तो मने वधारे खुशी थशे।' दीप से दीप जला! अपना अनुभव बांटो और जिस पार्टी में मित्र के घर गया ऐसे दस को बनाकर आओ फिर मेरी व्यासपीठ के पास आना। मैं आपका इन्तजार करूंगा। मैं स्वागत करता हूं जिसने यह लिखा है। उसने तो नाम भी लिख दिया है। काम बड़ा अच्छा किया बेटा, खुश रहो, सावधान!

एक ओर प्रश्न, 'बापू, यदि आपके साथ पत्र व्यवहार किया तो आपको अच्छा लगेगा?' जरूर लगेगा, यस। जवाब दूं तो दूं, न दूं तो न दूं! यह मेरी स्वतंत्रता है। आप लिख सकते हैं यह आपकी स्वतंत्रता हैं। क्योंकि मेरे पर इतने पत्र आते हैं, किन-किन को जवाब दूं? लेकिन

पढ़ता हूं जरूर। आप लीखिएगा। लेकिन जवाब दूं, न दूं! पहले सबको जवाब लिखता था। कई लोग चालीस-चालीस साल से मेरे पत्र संभाले हुए हैं! लेकिन मानसिकता भी नहीं रही, किसीको पत्र लिखूं। और मैं लिखूंगा तो आप मेरे अक्षर पढ़ भी नहीं सकोगे! क्योंकि मेरे अक्षर बिलकुल बिगड़ चुके हैं!

मुझे पांच दिन से लोग कह रहे हैं, 'बापू, आपने कार्तिक के पुरुषार्थ के छः मुख की बात कही थी। तो यह मुख कौन, यह बताते जाना।' मैं बता दूं। कथा के प्रवाह में 'बालकांड' में आता है कि कार्तिकेय का जन्म हुआ। उसका तुलसीदासजी ने तात्त्विक अर्थघटन कर दिया कि कार्तिकेय पुरुषार्थ है। महान पुरुषार्थ षड्मुखी होता है। हम सब पुरुषार्थ करनेवाले, उद्यम करनेवाले, नोकरी-धंधा करनेवाले, पैसा चाहिए सब संभालने के लिए; तो हम सब लोग काम करते हैं, पुरुषार्थ करते हैं। पुरुषार्थ षड्मुखी होता है। ठीक से सुन लो। सावधानी से सुन लो। पुरुषार्थरूपी कार्तिकेय का पहला मुख है पुरुषार्थ करो लेकिन निमित्त बनकर करो। ठाकुरजी ने मुझे निमित्त बनाया। यद्यपि आपने सब किया, लेकिन आपसे किसी ने करवाया है। षड्मुख पुरुषार्थ का प्रथम मुख है निमित्त बनकर कर्म करना। मैं एक शब्द और जोडूंगा प्यारे, पुरुषार्थ का एक मुख है निमित्त बनकर पुरुषार्थ करना लेकिन, लेकिन, लेकिन नमित बनकर नहीं करना। मेरे से क्या हो? मैं क्या करूं? ऐसे कायर बनकर, नमित बनकर नहीं करना। पुरुषार्थ के आरंभ में अर्जुन भी नमित हो गया था! मेरे गात्र ढीले हो रहे हैं! मेरे धनुष्य-बाण गिरे जा रहे हैं! मुझे बुखार होने लगा है! कायर होने लगा था। भगवान उसको सही पुरुषार्थ में जोड़ देते हैं। और पहले मुख भी बता देते हैं कि निमित्त बनकर करना।

दूसरा मुख, पुरुषार्थ श्रद्धा से करना, स्पर्धा से मत करना। मेरे इस निवेदन पर बहुत चर्चाएं होती रहती है। लोग कहते रहते हैं कि स्पर्धा न करे तो विकास नहीं होगा। स्पर्धा करो। मैं स्पर्धा का विरोधी नहीं हूं। लेकिन दूसरों से तुम्हारे पुरुषार्थ की स्पर्धा मत करो, खुद से करो कि गत साल मैं यह कमाया मेरे पुरुषार्थ से। मैं खुद से स्पर्धा करूं कि अगले साल मैं इससे ज्यादा कमाऊं। क्यों न स्पर्धा हमारे खुद से करे? अब दूसरों के साथ स्पर्धा करने जाओ तो मुख कुमुख हो जाएगा। यह उनका पुरुषार्थ है, उनका कर्म है। तुम अपने से स्पर्धा करो। दूसरा मुझसे ज्यादा भजन कर रहा है, उसकी स्पर्धा मत करो। खुद से करो कि इस साल मैंने इतना भजन किया, अगले साल मैं इतना भजन करूंगा। खुद से स्पर्धा करो, दूसरों से नहीं। थक जाओगे। श्रद्धा पुरुषार्थ का दूसरा मुख है।

पुरुषार्थ का तीसरा मुख है कुशल बनकर पुरुषार्थ करो। अपने धंधे में कुशल बनो। यह धर्म सिखाता है, याद रखना। 'गीता' ने कहा है, 'योग: कर्मषु कौशलम्।' तुम्हारी कुशलता से आप जो भी कर्म करो यह तुम्हारा योग है। फेक्टरी कुशलता से चलाओ। तुम जहां जोब करते हो, कुशलता से करो। तुम कोई धंधा करते हो, तुम कोई व्यापार करते हो, कुछ भी करते हो, कुशलतापूर्वक करो। यह तीसरा मुख है। कृपणता से मत करो, कायरता से मत करो। कौशल्य होना चाहिए आदमी में। पुरुषार्थरूपी कार्तिकेय का चौथा मुख परमार्थ। पुरुषार्थ परमार्थ के लिए करो। स्वार्थ के लिए तो पूरी दुनिया करती है। परमार्थ के लिए पुरुषार्थ करो उसका अर्थ मैं इतना ही करता हूं कि पुरुषार्थ करके जो कमाते हो उसमें से दसवां हिस्सा जहां आपका कोई स्वार्थ न हो ऐसे जरूरतमंदों के लिए बांटो। परमार्थ के लिए पुरुषार्थ। हमारा पुरुषार्थ कुमुख हो चुका है क्योंकि स्वार्थ के लिए हो रहा है! कमाना बुरी बात नहीं है। खुब कमाओ। नहीं कमाओगे तो कथा कैसे करवाओगे? यह (रसेश) मांग कर बैठा है चौथी कथा की! नब्बें पर्सन्ट देता हूं। दस पर्सन्ट मेरे हाथ में है। मैं अब किसी का सौ पर्सन्ट वादा नहीं करता हूं। लेकिन दूंगा तो 'मानस-विश्राम' दूंगा। मथुरा में दूंगा, विश्राम घाट। बाकी ठाकुरजी की इच्छा! लेकिन मथुरा में यदि कथा हो सकती है, करूंगा। यदि ठाकुरजी करवाए तो करना है। कब हो, हो न हो, कुछ निश्चित नहीं है। लेकिन मांगा है तो देता हूं। मथुरा के विश्रामघाट के भाईबीज के यमुना स्नान की महिमा है। अल्लाह ने यदि किया। लेकिन कमाओगे तो करोगे। पुरुषार्थ परमार्थ के लिए हो कि हमारी आय का दसवां हिस्सा हम ईमानदारी से निकालेंगे।

मेरे युवान भाई-बहन, आपको मैं प्रार्थना करूं, आपके पोकेट मनी से दसवां हिस्सा निकालो गरीब लोगों के लिए। कोई गरीब छात्र के पास फीस देने के पैसे न हो उसे फीस दो। किताबें न हो, युनिफ़ोर्म न हो, किसी को दवाईयां चाहिए। मेरा पूरा देश यदि अपनी आय का दसवां हिस्सा निकाले। सौ रुपया कमाए वो दस रुपया अलग कर दे। बहुत सरल हो जाए काम दुनिया का। चौथा मुख है परमार्थ। कमाई परमार्थ में लगे। पांचवां मुख है संतोष। परमात्मा ने तरक्की दी, खूब कमाएं। पूरी प्रामाणिकता से हम कमाएं। लेकिन संतोष यह पांचवां मुख है। दाता ने दिया, मैंने पुरुषार्थ किया। चलो, पूरी साल में मेरे पुरुषार्थ फलस्वरूप जो मिला, संतोष, डकार। महाप्रभुजी कहते हैं, आप कामना करोगे, सकाम भक्ति करोगे और आपकी कामना पूरी भी हो जाएगी तो संसार पैदा हो जाएगा, भक्ति नहीं पैदा होगी। इसीलिए महाप्रभुजी कहे, यदि भक्ति करनी है, या तो पूर्णकाम की शरण में रहो या निष्काम की शरण में रहो। किसके पैर पकड़ने? जो पूर्णकाम हो। जो पूर्णकाम नहीं वो खा जाएगा, शोषण कर लेगा! जो पूर्णकाम है, नगाधिराज हिमालय उनके चरणों मे गिरा है। या तो नि:काम।

नमामि भक्त वत्सलं । कृपालु शील कोमलं ।
भजामि ते पदांबुजं । अकामिनां स्वधामदं ।।
निकाम श्याम सुंदरं । भवाम्बुनाथ मंदरं ।
प्रफुल्ल कंज लोचनं । मदादि दोष मोचनं ।।

पांचवां मुख है संतोष, एक डकार। एक साल में जितना मिल गया, संतोष। दूसरे साल और कमाओ। फिर जो मिला संतोष। ये पांचवां मुख है। छठ्ठा और आखिरी मुख है पुरुषार्थरूपी कार्तिकेय का और वो है आत्मसुख। जिसको सुख कहते हैं शास्त्र। हमारे पास सुख नहीं है, सुविधा है। कलर टी.वी सुख नहीं है, सुविधा है। फ्रिज़ सुख नहीं है, सुविधा है। सुख तो नौ दिन यहां है। आपका पता नहीं लेकिन मैं तो सुख में ही नाच रहा हूं! आनंद ही आनंद है! पुरुषार्थ के परिणाम में यदि हम सुविधा प्राप्त करे और सुख न मिले तो यह मुख कुमुख है। तो सुख तो यहां है। मेरे लिए आनंद इतना है कि पैसा जेब में एक नहीं और चाहूं जो होता है! मुझे कहते हैं, बापू, यह सब आपका है। इतनी रीच व्यासपीठ कोई नहीं होगी विश्व में! इतनी जो मालामाल व्यासपीठ है! नरसिंह मेहता की हूंडी का स्वीकार हुआ है, ऐसा नहीं, मोरारिबापू की कई हूंडी भी स्वीकारी गई है।

हमारी चर्चा चल रही है पुरुषार्थ के षड्मुख की। आखिरी मुख है, छठ्ठा मुख है सुख। हमारे पास साधन है, सुविधाएं है, सुख कहां है? सुख तो हरिगुण गाने में है। यदि हर एक पुरुषार्थ के बाद परिणाम में सुख न मिले तो यह कुमुख है। क्या पाया? फल क्या? थकावट, टेन्शन, डिप्रेशन! क्या फ़ायदा यदि सुख न पाया। सुख कहां-कहां है वो बिंदु साधक को खोजना चाहिए। केवल खोजना नहीं, अनुभव करना चाहिए। कोई कहे कि यहां सुख है उस पर मत मानो। खुद अनुभव करो। क्योंकि वेदान्त कहता है, हम तत्त्वत: सुख स्वरूप है। केवल रघुवंशमणि सुख स्वरूप नहीं। हम सब उनके अंश के नाते सुख स्वरूप है। हमारा सुख किसी ने चुराया नहीं है। हमनें ही अपनी चतुराई के कारण उस पर पर्दा डाले रखा है! बेनकाब करो उसको। सुख सबके पास है। हम सुख स्वरूप है। भगवद्कथा हमारे में दबा हुआ सुख प्रगट कर देती है। कोई देता नहीं था, पर्दा खोल देता है। केवल इतनी ही प्रक्रिया करनी होती है। बुद्धपुरुष कुछ देता नहीं क्योंकि बुद्धपुरुष जानता है, तेरे में है जो मेरे में है। जो मेरे में है वो भी तेरे में है। हां, तू देख नहीं पा रहा है। पर्दा डाला हुआ है। कहते हैं, गुरु दीक्षा देते हैं। दीक्षा देना मानी क्या? पर्दा हटा देना, खोल देना। हमारा सुख हमको महसूस हो। पुरुषार्थरूपी कार्तिकेय का छठ्ठा मुख है सुख।

मेरे पास जो लिस्ट हरीशभाई ने भेजा, उसमें से 'सावधान' शब्द का उपर-उपर से आपको दर्शन करा कर मैं कथा को विराम की और लिए चलूं। 'उत्तरकांड' की कथा है, भगवान राम बालक है। कागभुशुंडि उनके आंगन में उड़ रहे हैं और भगवान राम कभी रोते हैं, कभी हंसते हैं। कौए को पकड़ने जाते हैं, पकड़ नहीं पाते हैं तो रोते हैं। ऐसी प्रभु की बाललीला देखकर वहां कागभुशुंडि और राम की जो लीला शुरू होती है और फिर भगवान मुस्कुरा देते हैं। भगवान की माया को प्रेरणा मिली और

प्रेरित कर दिया भुशुंडि को तब कागभुशुंडिजी कहते हैं, वो माया मुझको बाधा नहीं हुई। अन्य जीवों की तरह मुझे परेशान करनेवाली नहीं हुई। क्यों?

नाथ इहाँ कछु कारन आना।
सुनहु सो सावधान हरिजाना।।

विशेष मैं विस्तार नहीं कर पाउंगा लेकिन यहां 'सावधान' शब्द का प्रयोग है। फिर आगे गोस्वामीजी कहते हैं-

सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग।
श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग।।

फिर भुशुंडिजी को संबोधित करते हुए कहा। यहां सेवक के तीन लक्षण बताते हैं। सावधानी से सुनिए। सेवक किसको कहते हैं? आश्रित किसको कहते हैं? हम वल्लभ समर्पित है। कोई कहे, हम व्यासपीठ समर्पित है। कोई कहे, हम सेवक हैं। बड़ा प्यारा शब्द है 'सेवक।' सेवक की परिभाषा क्या? 'मानस' क्या परिभाषा करता है? तुलसीदासजी कहते हैं, तीन लक्षण हो वो सेवक। एक, जब तक जाग्रत है, सावधान है तब तक वो पवित्र रहता है। होश उड़ जाए, माया लिपट जाए, आदमी थोड़ा लड़खड़ा जाए तो बात और है। लेकिन जितना होश में है, जब तक होश में है तब तक जो शुचि रहता है। आंतर्-बाह्य पावित्र्य यह सेवक का, आश्रित का पहला लक्षण है। दूसरा लक्षण, सुशील; जिसमें सब अच्छे शील है। यह सेवक की दूसरी परिभाषा 'मानस' में आई थी। तीसरी परिभाषा है सेवक की जिसमें सद्बुद्धि है। भगवान कहते हैं, भुशुंडि, यह तीन लक्षणवाला आश्रित किसको प्रिय नहीं लगता? जिसमें सुमति है, जिसमें सुशील है और जो पवित्र है ऐसा आश्रित किसको प्यारा न लगे? यदि कोई आश्रित में शील नहीं है, पवित्रता नहीं है, कुबुद्धि है, सुबुद्धि नहीं है तो बुद्धपुरुष को प्यारा नहीं लगता, ऐसा तो नहीं लेकिन वो प्यार बहुत जताएगा नहीं। क्योंकि अपात्रता के कारण थोड़ा ज्यादा प्यार जताने से वो उसको सिद्धांत बना देता है। हे कागर्षि, हे भुशुंडि, श्रुति-पुरान ऐसी नीति कहते हैं। आप सेवक की परिभाषा सावधानी से सुनिए। और आखिर 'सावधान' शब्द 'रामचरित मानस' का-

नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर।
सावधान सोउ सुनु बिहंगबर।।

कागभुशुंडि के सामने कथा सुनते-सुनते आखिर में गरुडजी ने जो प्रश्न पूछे वो वार्तालाप में ज्ञान-भक्ति में क्या अंतर है वो भी पूछा तब कागभुशुंडिजी ने कह दिया कि उसमें थोड़ा अंतर है। हे विहंगबर, हे पक्षीश्रेष्ठ, ज्ञान और भक्ति में तत्त्वत: कोई भेद नहीं है। समुद्र का जल और समुद्र की लहर, दो नहीं है, तत्त्वत: एक है। लेकिन उछलता है वो तरंग है, उछलता नहीं वो सागर है। तत्त्वत: एक है। ज्ञान सागर है लेकिन भक्ति एक तरंग है। उछाल, उल्लास, आनंद, नर्तन, गायन यह तरंग है। तत्त्वत: ज्ञान और भक्ति में कोई अंतर नहीं।

तो बाप, आपके सामने गुरुकृपा से 'सावधान' शब्द लेकर मेरा यह घाट मुखर हुआ। विराम की ओर जाते हैं हम तब कथा का शेष भाग आपको कह दूं। भगवान राम अपनी सेना के साथ लंका में सुबेल पर्वत के शिखर पर विश्राम पर हैं। यहां रावण अखाडे में मनोरंजन प्राप्त करने के लिए है। अप्सराएं, गंधर्व, किन्नर सब आए और वहां नृत्य, गान सब शुरू होता है। दूसरे दिन सुबह में अंगद को भेजा गया संधि का प्रस्ताव लेकर राम की ओर से। लेकिन संधि विफल रही। संघर्ष अनिवार्य हो गया। युद्ध घोषित हुआ। धमासान युद्ध होता है। यहां लक्ष्मण मूर्छित। फिर मेघनाथ को गति। कुंभकर्ण की वीरगति। छोटे-बड़े राक्षसों को वीरगति देते-देते आखिर में रावण मैदान में आया और भगवान राम को ललकारा कि कहां है वो तपस्वी? राम को निमंत्रण है कि आप तपस्वी हैं, मैं मनस्वी हूं। मनस्वी को कंट्रोल तपस्वी कर सकता है। इकत्तीस बाण उठाया ठाकुर ने। दस मस्तक के लिए, बीस भुजा के लिए। इकत्तीसवां बाण रावण की नाभि में मारा। और रावण धरती पर गिरा है। गोस्वामीजी कहते हैं, गिरते-गिरते रावण का तेज प्रभु के चेहरे में समा गया। तेज में तेज समा चुका है।

रावण का संस्कार हुआ। लंका का राजतिलक विभीषण से हुआ। हनुमानजी जानकी जो खबर करते हैं कि माँ, सदल, सकुल रावण का निर्वाण हो चुका है। अग्नि में जो छिपा रूप था वो प्रगट हो गया। लौकिक

प्रतिबिंब जो था सीता का वो खत्म हो गया। मूल सीता प्रगट हुई। अब विमान तैयार हुआ है। भगवान मित्रों के साथ उड़ान भरते हैं। यहां प्रभु ने हनुमानजी को कहा, अयोध्या पहुंच जा और भरत को खबर कर दे। प्रभु का विमान सब तीर्थों में जाते-जाते वो गंगा का घाट जहां केवट ने प्रभु के चरण धोए थे वहां आकर उतरा। सबको बुलाया। तिरस्कृत, वंचित सब दौड़े! भगवान सबको गले लगाते हैं। केवट को कहा, भैया, तुने मुझे नौका में बिठाया था ना, उतराई बाकी थी। मैं देने आ गया आपकी उतराई। केवट ने कहा, प्रभु, मेरी चतुराई थी दूसरी बार आपका दर्शन करने के लिए! बाकी आप मुझे कुछ देना चाहते हैं तो मैंने आपको नौका में बिठाया था, आप मुझे विमान में बिठाकर अयोध्या ले चलो। भगवान निषाद को साथ लेते हैं और वहीं से विमान उड़ान लेता है। यहां तुलसीदासजी समर की विजय गाथा गाकर 'लंकाकांड' को विराम देते हैं।

'उत्तरकांड' के आरंभ मे पूरी अयोध्या ज़ार-ज़ार रो रही है। एक दिन बाकी है। यदि आज राघव नहीं आए तो खबर नहीं, क्या होगा? ऐसी दशा थी, इतनें में श्री हनुमानजी आए हैं। हनुमानजी ने कहा, भरतजी, मैं पवन का बेटा; लोग मुझे हनुमान कहते हैं। हनुमानजी ने पहली बार अपना नाम कहा है। भरतजी, सकुल, सदल रावण को निर्वाण देकर परांम्बा जानकी और लखन सहित राघवेन्द्र पधार रहे हैं। विमान सरजू तट पर उतरान लेता है। विमान से भगवान जब नीचे आए जन्मभूमि अयोध्या की मिट्टी को अपने सिर पर रखा। सरजू को प्रणाम किया। बंदर, भालू जो साथ में थे वो भी विमान से जब नीचे उतरे तो मनुष्य हो गए थे। राम के साथ जब गए तो बंदर थे, आए तो सुंदर मनुज। रामकथा क्या है? बंदर को सुंदर बनाने की एक प्रक्रिया है। बंदर जैसी वृत्तियों को सुंदर सद्वृत्ति में बदल देने का कीमिया है यह रामकथा। भगवान दौड़े! गुरुदेव आ रहे हैं। अपने धनुष्य-बाण फेंक कर गुरु के चरणों मे दंडवत् किया। मानो विश्व को राम ने संदेश दिया कि गुरु, आपके चरणों को पकड़ कर कहता हूं कि शस्त्र की जरूरत थी तब तक मैंने शस्त्र रखा। अब मुझे पता हो गया कि रामराज्य शस्त्र से नहीं आएगा, शास्त्रवेत्ता के चरण पकड़ने से आएगा। शस्त्रत्याग किया है। भगवान ने अमित रूप धारण कर लिए। जिसकी जैसी भावना, भगवान उसको ऐसे मिल रहे हैं। वशिष्ठ आदि सब आ गए। ब्राह्मणों को वशिष्ठजी ने पूछा, आप सब कहे तो आज ही राजतिलक कर दे? ब्राह्मणों ने कहा, अब कल का भरोसा न करे। आज ही राजतिलक कर दो। चौदह साल पहले जो वस्त्र अलंकार पहनने थे वो चौदह साल के बाद पहने गए! हमारे दु:ख बहुत छोटे-बड़े होते हैं। रोने की आदत-सी हो गई है! बाकी नरसिंह मेहता को याद करना-

सुख दु:ख मनमां न आणीए, घट साथे रे घडियां;
टाळ्यां ते कोईनां नव टळे, रघुनाथनां जडियां।

दिव्य सिंहासन मंगवाया गया। भगवान राम को सीतासह विराजमान होने का ऋषियों ने आदेश दिया। पृथ्वी को प्रणाम करके, गुरु को, मुनियों को, ब्राह्मण देवताओं को प्रणाम करके, माताओं को प्रणाम करके, सूर्य को प्रणाम करके दिशाओं के देवता को प्रणाम करके, प्रजा को प्रणाम करके भगवान विनम्रता से राजगादी पर सीता सह

जहां चांद है वहां कलंक है लेकिन मुझे एक बड़ी प्रसन्नता है कि 'मानस' का भरत एक ऐसा चांद है, जिसमें कोई कलंक नहीं। चंद्र में कलंक क्यों है? बहुत बातें कही जाती है चंद्र में कलंक की लेकिन चंद्रमाँ में कलंक, काला धब्बा जो लग गया है उसका एकमात्र जो मूल कारण यह है कि उसने अपने गुरु की धर्मपत्नी पर खराब दृष्टि की थी। आदमी को प्रतिष्ठा मिलती है तो आदमी थोड़ा चुक जाता है, सावधान! हमको भी प्रतिष्ठा मिल जाती है, ये हमारा प्रभाव नहीं, सद्गुरु का प्रभाव है। हम तो उधार घूम रहे हैं यार! किसी की फिक्स डियोज़िट में जी रहे हैं हम। लेकिन यह प्रभुता पाने के बाद मद किसको नहीं आता? लेकिन भरत का यशचंद्र ऊंचाई मिलने पर भी कलंक से मुक्त है।

बिराजीत हुए। वशिष्ठजी ने भगवान राम के भाल में त्रिभुवन को रामराज्य देते हुए रामराज्य का तिलक किया और तुलसी गा उठे-

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा।
पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।

भाल में तिलक। सारे त्रिभुवन में जयजयकार हुआ। रामराज्य की स्थापना हुई। छः महिने बीत गए। हनुमानजी को छोड़कर प्रभु ने सभी मित्रों को बिदा दी। हनुमान पुन्यपुंज है उसके पुण्य क्षण नहीं हुए है इसीलिए लौटना नहीं पड़ा। दिव्य रामराज्य की स्थापना। बहुत बड़ा वर्णन रामराज्य का जिसकी चाह विश्ववंद्य गांधीबापू करते थे।

यहां भगवान राम, जानकी नरलीला करते हैं। समयमर्यादा पूरी हुई। सीयाजु ने दो पुत्रों को जन्म दिया। लव-कुश को जन्म दिया। अयोध्या के वारिस के नाम बताकर तुलसी ने रामकथा बंद कर दी। सीता का सगर्भा स्थिति में दूसरी बार का वनवास यह तुलसी को अच्छा नहीं लगा। तुलसी कहते हैं, उसमें दुर्वाद है, विवाद है। मैं तो संवाद की कथा गानेवाला आदमी हूं। मुझे इस विवाद में नहीं जाना। उसके बाद 'रामायण' में कागभुशुंडिजी का चरित्र है। गरुड उनके पास कथा सुनते हैं। यह सात प्रश्न 'मानस' के सात सोपान का सार है, अर्क है, निचोड़ है। सात प्रश्नों का प्रभु ने उत्तर दिया। गरुड प्रसन्नता से पंख फैलाने लगे। सद्गुरु के चरण में प्रणाम करके गरुड वैकुंठ गए। भुशुंडि ने कथा को विराम दिया। कैलास के ज्ञानपीठ पर बैठे महादेव ने पार्वती को कहा कि अब आपको कुछ सुनना है? बोले, महाराज, मैं कृतकृत्य हो गई। शिव ने कथा को विराम दिया। बाबा याज्ञवल्क्य तीरथराज प्रयाग में गंगा, यमुना, सरस्वती के तट पर बहते प्रवाह पर कथा कहते हैं उसने भरद्वाजजी के सामने विराम दिया कि नहीं वो स्पष्ट नहीं। तुलसी रामकथा को विराम देते हुए आखिर में बोलते हैं-

रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि।
संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।

तीन करो, आखिरी मेसेज । राम को स्मरो, राम को गाओ, राम को सुनो। यह तीन विद्या ही मेरे लिए सत्य, प्रेम और करुणा है। सत्य में सुमिरन किया जाता है। प्रेम में गाया जाता है। किसी कि करुणा हो तभी तो सुना जाता है। वर्ना हम नहीं सुन पाते। करुणा का प्रसाद है श्रवण करना। 'रामहि सुमिरिअ', सत्य। 'गाईअ रामहि', प्रेम। 'संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि', यह करुणा है। इसके आधार पर मेरा निचोड़ है सत्य, प्रेम, करुणा। कथा को विराम देते हुए अपने मन को सावधान करते हुए वहां और हम सबको अपना अनुभव बताते हुए तुलसी कहते हैं, जिसकी रजमात्र कृपा, लवलेस कृपा हुई तो मेरे जैसा मतिमंद आज परम विश्राम को प्राप्त कर रहा है। राम समान और कौन हो सकता है?

चारों घाट पर परम आचार्यों ने अपने-अपने श्रोता के सामने कथा को विराम दिया। इन चारों आचार्यों के अनुग्रह की छायामें बैठकर मेरा यह घाट, तलगाजरडी घाट नौ दिन के लिए मुखर हुआ था आपके सामने। मेरा भी यह घाट रामकथा को विराम देने के लिए अग्रसर है तब मुझे लगता है कि क्या कहूं? आप सभी ने बहुत श्रद्धा से कथा सुनी है। शांति से कथा सुनी है। आयोजन भी भगवान की कृपा से सुचारु रूप से संपन्न हो रहा है। मेरा हर वक्त का यह अनुभव मैं कहता हूं कि नौ दिन में मुझे लगता है कि मैंने सब कुछ कह दिया। फिर भी लगता है कि सब कुछ रह गया! यही तो है शास्त्र की महिमा। मेरे युवान भाई-बहन, आपकी मौज़ूदगी, मुझे इक्कीसवीं सदी का सगुन लगता है। यह छोटे-छोटे बच्चों से लेकर कितने छोटे-बड़े मेरे फूल हैं! आप सब ने मौज से कथा सुनी है। मुझे कोई उपदेश नहीं देना है। मुझे जाते-जाते सिर्फ़ इतना ही कहना है, यदि कोई बात आपके दिल तक पहुंची हो और आपका दिल उसे ग्रहण करता हो तो यह बात आपकी है। आपकी संपदा को संभालिएगा। मैं ग्रंथ को बंद कर रहा हूं। जीवनग्रंथ को खोलिएगा। बाबुभाई कानकिया और उनके परिवार इस कथा के निमित्तमात्र यजमान बने हैं उनके पूरे आयोजन के लिए मैं प्रसन्नता व्यक्त करता हुआ मैं भगवान की कथा को विराम दूं इससे पूर्व नौ दिन की यह कथा, उसका परिणाम, उसका फल, उसका सुकृत हम और आप सब मिलकर श्रीमन् महाप्रभुजी वल्लभाचार्य भगवान के चरणों में समर्पित कर देते हैं।

मानस-मुशायरा

उलझनों में खुद उलझकर रह गए वो बदनसीब,
जो तेरी उलझी हुई झुल्फों को सुलझाने गए।
इससे बढ़कर क्या मिलती हमें दादें वफ़ा,
हम तेरे ही नाम से दुनिया में पहचाने गए।

– पारसा जयपुरी

या तो कुबूल कर मेरी कमज़ोरियों के साथ,
या छोड़ दे मुझे मेरी तन्हाइयों के साथ।
लाज़िम नहीं कि हर कोई हो कामयाब ही,
जीना भी सीख लीजिए नाकामियों के साथ।

– दीक्षित दनकौरी

वो जहां भी रहेगा रोशनी लुटायेगा।
चरागों को अपना कोई मकां नहीं होता।

– वसीम बरैलवी

चाहा तो न था कि जग में मशहूर हो जाऊं।
इच्छा तो इतनी है कि खुद को मंज़ूर हो जाऊं।

– राजेश रेड्डी

मुझे जितनी जरूरत थी वो उतना हो गया मेरा।
उसके आगे वो किसका हुआ वो खुदा जाने या वो जाने।

– राज कौशिक

क्वचिदन्यतोऽपि

कभी-कभी कविता शिखर से घाटी में आती है और कभी-कभी घाटी से शिखर पर चढ़ती है

नरसिंह मेहता अवोर्ड-२०१६ अर्पण प्रसंग पर मोरारिबापू का उद्‌बोधन

आदरणीय नरोत्तमबापा थोड़े समय पूर्व पांच बजे मुझे कहते थे कि किसी विदेशी ने इस भू-भाग के बारे में लिखा है कि शाम को छः से आठ बजे तक यहां बीस हजार आरतियां होती होगी! ऐसे सुंदर प्रदेश में रही हुई सभी चेतनाओं को शरदपूर्णिमा के उजाले में प्रणाम करता हूं। आज जब मेहता मियां को हार पहनाने आया हो ऐसा एक सुंदर सेतु निर्मित हुआ है। ऐसा शब्दप्रयोग किसीने अस्मिता पर्व में किया था। अभी हेमंतभाई ने भी किया था। आज के उत्सव की उत्सवमूर्ति जनाब आदरणीय मेरे अजीज जलनसाहब, आपको मुबारकबाद। बार-बार आदाब, सलाम। इस ट्रस्ट के प्रमुख आदरणीय श्री रघुवीरभाई मंच पर नहीं है पर मुझे पता है, उनका शरीर वहां है पर मन रूपायतन में होगा। रघुवीरभाई को याद करके, आदरणीय लाभुदादा, मिस्कीनसाहब, मनोहरभाई त्रिवेदी, राजेन्द्रबापू, हरीशभाई, हेमंतभाई, हमारा प्रणव, हर्षदभाई, बहन पूर्णिमाबहन और आप सब भाईयों-बहनों। यह बाईसवां अवोर्ड है। हम सब साक्षी हैं। शायद मैं गलत हो सकता हूं, मुझे पता नहीं। पर मेरी आंखें अभी कमजोर नहीं हुई। तो मैं लगभग सच कहता हूं। इस अवोर्ड में लोगों की संख्या सबसे ज्यादा है। उत्तरोत्तर संख्या बढ़ रही है। ज्यों पूनम होने में चांद बढ़ता है। आज जलनसाहब को वंदन करने काफ़ी लोग आए हैं। साहब कहते थे कि अभी ठंडक थोडी बढ़ी है। जलन के लिए थोडी ठंडक जरूरी भी है।

कविवर रवीन्द्रनाथ टागोर ने कहा है कि जो बहुत अच्छे काम करे तो उन्हें वेतन के रूप में कीर्ति देनी चाहिए। पर जिसने पूरे जगत को आनंद दिया हो ऐसे कवि को तो प्रीति देनी है। नरसिंह मेहता अवोर्ड गुजराती भाषा का प्रतिष्ठित अवोर्ड माना जाता है, जो योग्य है। मैं तो यह कहूं, यह गुजराती भाषा का प्रीति पुरस्कार है। रवीन्द्रनाथ टागोर कहते हैं कवि को प्रीति पुरस्कार ही चाहिए। हम सब जलनसाहब को प्रीति द्वारा प्रणाम कर रहे हैं। सप्रीति प्रणाम कर रहे हैं। हेमंतभाई ने अच्छा कहा कि थोड़े अपवाद को ध्यान में न लें तो अवोर्ड का उत्सव लगभग जूनागढ में ही और वह भी एक के सिवा 'रूपायतन' में ही आयोजित होता है। क्या आपको नहीं लगता कि यह अवोर्ड समारोह यहीं होना चाहिए? यह मेरा कोई पक्षपात नहीं है। साहब, ऐसा वातावरण जगतभर में नहीं मिलेगा। चारों ओर गिरनार का वैभव इसके बीच मेहता के नाम पर ऐसा सुंदर पुरस्कार यह

स्थान ही दिलाए। मेरा यह विचार है, सूचन नहीं है। हर जगह उत्सव तो हो ते हैं, अच्छी तरह होते हैं। पर जूनागढ में 'रूपायतन संस्था' अपना एक नया प्रोजेक्ट लेकर आगे बढ़ रही है। साहब, हेमंतभाई की पूरी टीम को मैं इतना ही कहूंगा, नरसिंह के मार्ग पर चलेंगे तो हूंडी स्वीकार करनेवाले मिलेंगे ही। नरसिंह का मार्ग होना चाहिए। हूंडी का स्वीकार होगा ही। एक बार के स्वीकारने से तो नरसिंह की व्यापकता नहीं मानी जाएगी। जब हम में नरसिंहत्व पैदा होगा तब हूंडी स्वीकारनेवाले कोई न कोई दामोदर अवश्य आएंगे, इसमें कोई शंका नहीं है। ऐसी कितनी हूंडी मोरारिबापू की स्वीकृत हुई है, इसका मैं एक साधु के रूप में मेरा आनंद व्यक्त करता हूं। पर अपना मार्ग नरसिंह का होना चाहिए। सिंह का हो, सियार का नहीं। मार्ग महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। कबीर कहते हैं-

ई रे मारग मारे जोवा कबीर कहे
ई रे मारग मारे जोवा।

तो हेमंतभाई ने जो यह कार्य उठाया है इसकी मुझे प्रसन्नता है। प्रभु से प्रार्थना है कि इस भूमि पर ऐसे कार्य होने ही चाहिए। होंगे ही ऐसी श्रद्धा अनुचित नहीं है। प्रति वर्ष अवोर्ड दिए जाते हैं। एक पसंदगी समिति है। तटस्थ भाव से नाम पर विचार होता है। मैं साक्षीभाव से आखिर में बैठता हूं। कितने ही शीलवान सहृदयों के मन में यह बात थी कि यह अवोर्ड जलनसाहब को मिलना चाहिए। और चयन करनेवाले बारबार यह नाम आगे ही आगे लाते थे। इस बार यह अवोर्ड जलनसाहब को जाता है। कहते हैं कि खुदा की मूर्ति नहीं है। वे तो व्यापक हैं। 'रामायण' में चौपाई है-

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।

यह मातरीसाहब भी ऐसे हैं, 'सुनइ बिनु काना।' उन्हें तकलीफ़ हैं पर 'सुनई बिनु काना।' यह फ़कीर सडसठ-अडसठ हजार का यंत्र कान में डालकर आया है! साहब, अब सुनते हैं। 'अस्मिता पर्व, संस्कृत पर्व' या किसी भी पर्व में उनकी अटूट उपस्थिति होती है। सुन नहीं सकते। मुझे कहे, 'अबु धाबी आना है।' मैंने कहा, 'चलिए।' किसीको तकलीफ़ न दे फिर भी नाम जलन! हम कितनों को जलन देते हैं फिर भी शांत! गजब है! मैं हृदय से 'रामायण' गाता हूं। कई संदर्भ ग्रंथ देखने का रस पैदा होता है। पूजनीय भाव जगता है। इनमें से जितना स्मरण रहे ये बताता जाता हूं। पर गझल के क्षेत्र में मुझे जलन मातरी के शे'र ज्यादा याद है। भगवान की कृपा है कि मुझे जिनके शे'र लेने हो वे मेरे सामने आते हैं, कहते हैं, मेरा उपयोग कीजिए! पर व्यक्तिगत रुचि से मुझे सबसे ज्यादा जलनसाहब के शे'र याद है। मैं कथा में कहता रहता हूं।

साहब, कविता कभी-कभी शिखर से घाटी में आती है। यह स्थान इसका प्रतीक है। कभी-कभी घाटी में से शिखर पर चढ़ती है। कभी-कभी कविता गिरनार की परिक्रमा करती है। यहां कितनी ऋचाएं, आयातें उतरती है। उपर से जो उतरे उसे आयात कहते हैं; ऋचा कहते हैं। शिखर से उतरी हुई वस्तु यहां छोटे से छोटे आदमी तक पहुंचती है। यहां घाटी में बसता एक छोटा-सा लकडहारा हमें पालकी में बिठाकर उपर ले जाता है। वह साधन बनता है। कविता भी ऐसा वाहक बनती हैं, जो हमें शिखर तक ले जाती है। यही कविता गिरनार की हरी परिक्रमा करती है। ऐसे स्थान में मिस्कीन साहब, आपने जलालुद्दीन का बहुत अच्छा अर्थ कहा। मैं प्रसन्न हुआ। मुझे ऐसे अर्थ का पता नहीं था। मुझे तो जलालुद्दीन के यहां कथा करनी है। यह मेरा संकल्प है। अल्लाह पूरा करे! पर मुझे उनके स्थान पर जाकर कथा करनी है। टर्की में तलाश जारी है। शायद एक वर्ष में परमात्मा मेरा मनोरथ पूरा करे। मुझे नौ दिनों की कथारूपी रूमी को अंजलि देनी है। लेबनोन जाकर खलिल जिब्रान को भी एक अंजलि देनी है। ऐसी इच्छाएं करता हूं। परमात्मा जाने पूरी हो या न हो! आपने (मिस्कीन साहब ने) कितना सुंदर और यादगार छोटा-सा प्रवचन दिया! यों तो सभी अच्छे हैं। मुझे लगता है ऐसे कार्यक्रम में बोलने की समयमर्यादा को हटा दे! यह तो हम घर में बैठे हैं तो थोड़ी बातें कर लें! पांच मिनट की पंद्रह मिनट हो जाती है! सात के बदले सत्ताईत मिनट हो जाती है! आखिर में मेरी बारी! मैं क्या करूं? यहां तो 'रत आवे अने न बोलिए तो हैयाफाट मरा।' अतः अपना उत्साह व्यक्त करने के लिए हम बोलते हैं। मेरा न तो कोई मित्र था या दुश्मन है। गजब है! कोई मित्र नहीं इसलिए कोई दुश्मन भी नहीं, उसका सुख है। मैं फायदे में हूं या नुकसान में,

पता नहीं! पर मेरा कोई मित्र नहीं। और

आग तो अपने ही लगा सकते हैं।
गैर तो सिर्फ़ हवा देते हैं।

मेरा कोई दुश्मन भी नहीं है। पर मेरा एक फ़कीर ऋषिकेश की कथा में रात को दो बजे आता था। मेरे यज्ञकुंड के पास मैं जागता रहूं। मुझे कोई साधना नहीं आती। मैं जीवन को साधना मानता हूं। साधना को अलग करने से जीवन भी अलग पड़ जाता है और साधना अलग पड़ जाती है। जीवन ही साधना है। जीवन ही अखंड बंदगी है। थोड़ा जीवन जी सके फिर साधना सिद्ध होने की आवश्यक्ता नहीं है। विषयी रहना नहीं है। मध्यम मार्ग अच्छा है। मैं अग्नि के पास बैठा रहता हूं। सबको पता है। फ़कीर आते थे और जाते वक्त कहे, 'बापू, आपके यज्ञकुंड में लोबान डाल सकता हूं?' मैं कहूं, 'थैला खोल, मैं ही डाल दू।' साहब, इस अग्नि को अपना-पराया कुछ भी नहीं। ये लोबान डाले, मैं गूगल। हम दोनों की मेहफ़िल जमे। एक दिन वे कहने लगे, जलालुद्दीन ने कवियों के प्रकार बताए हैं। किताब में है या नहीं, पता नहीं। फ़कीर के वचन पर भरोसा रखकर कहता हूं-

श्रद्धानो हो विषय तो पुरावानी शी जरूर?

आज तो पूरी दुनिया में सबूत चाहिए! सबूत, सबूत, सबूत! कैसे सबूत? किसी ने दशहरा पर कहा, हनुमानजी ने भगवान राम से कहा कि रावण का अर्धजला शरीर लेकर दिल्ही जाना पड़ेगा। क्योंकि वहां सब सबूत मांगते हैं! देश का, जवानों का, बोर्डर का मजाक मत उड़ाईए। मातरीसाहब ने तो ये कितने साल पहले ही कहा-

श्रद्धा नो हो विषय तो पुरावानी शी जरूर?
कुर्रानमां तो क्यांय पयंबरनी सही नथी।

व्यास ने कहां हस्ताक्षर किए है? यह तो हम कहते हैं, व्यासविरचित। यहां तो श्रद्धा ही रखनी चाहिए। श्रद्धा से ही उसी मार्ग पर चलना चाहिए। जो श्रद्धापूत है, लोग उन्हें दीवाना कहते हैं! जलन मातरी कहते हैं-

समजदारीथी अळगा थई जवानां सौ बहानां छे।
मने शंका पडे छे के दीवाना शुं दीवाना छे?

जलारामबापा क्या पागल थे? पर उन्हें सबसे अलग होना था, लोकमान्यता से अलग पड़ना था इसलिए लोग दीवाना कहने लगे। मैं गुणातीत, विशेषणमुक्त श्रद्धा में मानता हूं।

तो वह फ़कीर ने मुझे कहा था, कुछ कविताएं कुआरी होती है। इसमें गज़ल और सारी विधाएं आती है। पर एकेडेमिक की मुझे जानकारी नहीं है। फ़कीर ने कहा, 'सूफी परंपरा में जो थोडे से काव्य प्रकार हैं, जो रूमी ने कुछ प्रकाशित किए हैं। एक छोटा-सा कागज उन्हों ने उर्दू में लिखा था वो पढ़ता जाय और मुझे कहे, उसे कुआरी कविता कहते हैं। जिसे पाश्चात्य जगत वर्जिन पोएट्री कहते हैं। आज भी कुछ कवि मेरे लोकसाहित्य के क्षेत्र में, संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में, गज़ल के क्षेत्र में जो-जो प्रकार है उनमें कुछ कविताएं कुआरी है। फिर एक और प्रकार कहा, खुमारी की कविता। जलनसाहब की एक खुमारी है, साहब! पाकिस्तान गए मुशायरे में। एक निजी बात है। कह दूं? आपको बता दूं? मुझे यह जानना था कि वहां जलनसाहब का मुशायरा हुआ या नहीं? कहा, 'नहीं होने दिया!' हिन्दुस्तान में जैसी सहनशक्ति है उतनी दूसरी कहीं पर नहीं है। क्योंकि खुदा को, अल्लाह को एक फ़कीर ही आह्वान दे सकता है। बंदे के सिवा ऐसी निर्भयता किसी में नहीं होती। गंदा हो तो निर्भयता हो ही नहीं सकती! बंदगी से लबालब भरे को किसकी फ़िक्र? वही कह सकता है -

पजवे छे शाने कारण अल्लाह सीधो रे'ने?
शुं जोईए छे तारे हाजर थईने के'ने?

जो सगुण-निर्गुण की राजेशभाई ने व्याख्या बताई।

तमे पण दुश्मनो चालो आ मारा स्नेहीओ साथे,
ए कब्रस्तानथी आगळ मने क्यां लई जवाना छे?

चलो भई, चलो। क्योंकि वे मुझे इससे आगे कहां ले जाएंगे?

गमे ना सौ कवन तो माफ करजो एक बाबत पर,
खुदा जेवा खुदानां क्यां बधां सर्जन मजानां छे?

निदा फाज़लीसाहब मुशायरे में गए। वे मुझे बता रहे थे, 'बापू, मैं यह शे'र बोला तब मैं वापिस न आ सकूं ऐसी हालत हो गई थी! और वो शे'र था-

बच्चा बोला देखकर मस्जिद आलीशान।
अल्लाह तेरे एक को इतना बड़ा मकान?

कहा गया कि मुशायरा बंद करो! फिर आगे न चला। विरोध हुआ। ऐसी निर्भयता सहनी कठिन है। निर्दंभता सहनी भी, प्रामाणिकता सहनी भी कठिन है। समाज ऐसे नाजुक सूत्र सहन नहीं कर पाता! यह शायर ऐसा लिखते हैं जिसमें खुदा या अल्लाह को भी फटकारा हो! यह एक निर्भयता है। कवि निरंकुश होते हैं। उसे कोई दबा नहीं सकता। कविता में खुमारी हो! एक कुआरी कविता। मेरे शब्दों में कहूं तो एक गागरी कविता है। गागर में सागर हो जैसे! दो पंक्तियों में कितनी बड़ी बात है!

बोलकर फ़िर लब्ज़ों का मातम करे।
इससे बेहतर है कि बातें कम करे।

आप कुछ भी बोल दे फिर कहे मेरी भूल हो गई! हम ऐसे अर्थ में नहीं बोले थे! हमें मीडिया ने गलत तरीके से पेश किया! खलीलसा'ब का शे'र है कि फिर पछताना पड़े। दो पंक्ति के काव्य में बड़ा विश्व समा जाय। मानो गागर में सागर। रूमी इसे गागरी कविता कहते हैं। एक गागरी और एक सागरी कविता होती है। समंदर जैसी! दो पंक्ति में पूरा सागर गरजता हो। दो पंक्ति में चौदह रत्न आ जाय। मथना नहीं, मनन करना है। मनन से चौदह रत्न निकलते हैं। सागर मंथन करे तब निकले यहां तो मनन करने पर निकले। ऐसे कितने ही प्रकार बताएं थे पर सब मुझे याद नहीं।

इस शायर को सलाम करने, वंदन करने नरसिंह मेहता द्वारा गए हैं तब साहब, इनमें खुमारी दिखाई देती है। इनके शे'र में भी कहीं गागर में सागर है। कहीं दो पंक्तियों में विशाल सागर जैसी बातें बताई है। खूब दाद पानेवाला है यह कवि! मैंने ऐसे मुशायरे देखे हैं, जहां जलनसाहब केवल श्रोता हो। उनकी उपस्थिति का सबको पता हो फिर भी अतिथिरूप में एकाद गज़ल कहने के लिए भी कोई न कहे! सबको डर लगे कि इन्हें निमंत्रण न दे! मैं इसका साक्षी हूं। ये तो श्रवणेन्द्रिय खो बैठे हैं। इन्हें तो कुछ खबर हीं न रहे। यह तो 'स्थितप्रज्ञस्थ का भाषा?' मैं इन सबका साक्षी हूं। ये कविता और वक्तव्य परस्पर सहन नहीं कर सकते! ये तो साधक शायर ही सहन कर सकता हैं। विषयी शायर सहन न कर पाए! डूब जाता है! बोल भी नहीं पाते!

मैं बहुत प्रसन्न हूं। कई भावकों के मन में था कि जलनसाहब कब रूपायतन आए। निर्णायक समिति द्वारा इस बार जलनसाहब का नाम आगे आया। व्यक्तिगत और आप सबकी ओर से मैं बहुत आनंद व्यक्त करता हूं।

प्रीत प्रार्थना बेउ सहोदर।

यह प्रीत अवोर्ड है, साहब! कीर्ति अवोर्ड नहीं है। हम आपको महोब्बत करे और कोई फूल दे, 'झट जाओ, चंदनहार लावो' ऐसा कहे या तो 'रूमाल मारो लेता जाजो', चाहे मैला, गंदा, फटा हुआ हो! पर मेरा रूमाल। क्योंकि प्रेम को व्यक्त करने कुछ तो हो, जलनसाहब! यह आपकी कीर्ति या प्रतिष्ठा के लिए नहीं है। महोब्बत व्यक्त करने आज नरसिंह मेहता की चेतना द्वारा हम आपको 'प्रीति पुरस्कार' अर्पण करते हैं।

प्रीत प्रार्थना बेउ सहोदर।
ऊगे आथमे अंदर अंदर।

प्रीत और प्रार्थना; नरसिंह में यह नहीं लगता? इस मानव में पुकार, प्रीत और प्रार्थना; उनका विनय और अनुनय।

तांदुल नाम गजल ने दईए,
भावभर्युं भेटो जो भूदर।

तू मेहता को भाव से गले मिला यूं यदि गले मिलता तो हम गज़ल को तांदुल कह देते!

गज़ल अमारे हार हेमनो,
नरसिंह माफक दे दामोदर।

संजु वाळा की कविता है। उन्होंने पूरी गजल सुनाई थी पर मुझे दो-तीन शे'र याद रह गए। यह प्रासंगिक लगे सो कहे। एक शे'र कहकर बात पूरी करूं। कई आदमी ऐसे होते हैं-

वो सब को मालामाल करता है।

वो मेरा गिरनारी है। एक ओर दत्त, दूसरी ओर दातार बैठा है। कोई घूमते-फिरते नहीं है साहब! बैठे हैं!

वो सब को मालामाल करता है।
बैठे-बैठे कमाल करता है।

(रूपायतन, जूनागढ (गुजरात) में 'नरसिंह मेहता अवोर्ड-२०१६' प्रसंग पर प्रस्तुत वक्तव्य: ता.१५-१०-२०१६)

सांध्य–प्रस्तुति

'सावधान' शब्द में संदेश, उपदेश और आदेश तीनों समाहित है। बेटा बाहरगांव जाए। बेटी बाहर जाए अथवा तो अमरिका में पढ़ती हो। आप फोन करो तो कहते हो ना बेटा, ध्यान रखना। ध्यान रखना मानी सावधान रहना। ये संदेश है। उपनिषद से या 'श्रीमद् भागवत' से या 'मानस' से या तो कहीं से उपदेश मिले। हम अपने मन को सावधान करे तो वो उपदेश है। और कोई कहे, 'सावधान', तो वो आदेश भी है। तो 'सावधान' शब्द से एक संदेश यानी मेसेज; दूसरा उपदेश और तीसरा हुक्म, आदेश। 'सावधान' शब्द त्रिवेणी है। 'सावधान' शब्द यदि समझ में आ जाए 'मानस' का तो त्रिवेणी-तीर्थ है। 'सावधान' शब्दब्रह्म त्रिवेणी-स्नान है।

•

सेवा में सावधान रहना बहुत जरूरी है। सेवा में सावधानी रखने का अर्थ यह है कि हम जिसकी सेवा करे उसकी रुचि देखकर करे। उसकी रुचि या उसके स्वभाव में जो न हो वो सेवा न करे। सेवा की सावधानी का मतलब है सामनेवाले की रुचि को देखकर सेवा करना। विवेक से सेवा करे यह सावधानी का दूसरा लक्षण है। तीसरा सेवा की सावधानी का लक्षण है, स्पर्धामुक्त सेवा। स्पर्धा से सेवा नहीं की जा सकती। सेवा विवेक से होनी चाहिए; रजोगुणमुक्त होनी चाहिए; स्पर्धामुक्त होनी चाहिए और रुचि देखकर होनी चाहिए। 'मानस' में तो वहां तक भी लिखा है किसी का सम्मान करो तो भी सावधान होकर करो।

– मोरारिबापू

॥ जय सीयाराम ॥